परिचय

'वल्कल' के लेखक श्री शंभुदयाल सक्सेना सुविख्यात कवि, नाटककार, उपन्यास-लेखक तथा आलोचक हैं। आप बीकानेर के सेठिया कालेज में हैडमास्टर हैं। बड़े मिलनसार और सज्जन पुरुष हैं। 'साधनापथ' 'वल्कल' 'गंगाजली' आदि कई नाटक आपके प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त आपने बच्चों के लिए बहुत सुन्दर तथा उपयोगी साहित्य लिखा है।

भाषा की सरलता और विचारों की स्वच्छता आपकी कृतियों के विशेष गुण हैं।

इस नाटक की कथा रामायण से ली गई है। राजा दशरथ ने रामचन्द्रजी को राजतिलक देने की घोषणा कर दी। सारी अयोध्या में आनन्द-मंगल होने लगा; परन्तु मन्थरा दासी की बहकायी हुई कैकेयी गुस्से में भर कर पड़ रही। जब दशरथ कोप-भवन में पहुँचे और कैकेयी से उदासी का कारण पूछा तो उसने राजा को याद दिलाया कि आप मुझे दो वर पहले दे चुके हैं, आज अपना वचन पूरा कीजिए और भरत को राजगद्दी तथा राम को १४ वर्ष का वनवास दीजिए। दशरथ ने रानी को बहुतेरा समझाया पर वह टस से मस न हुई। अन्त में उन्होंने अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने प्राणप्यारे राम को वन भेजना स्वीकार कर लिया। परन्तु राम से वियुक्त होने के दारुण विचार से वे मूर्च्छा खाकर गिर पड़े।

जब सवेरा हुआ तो रामचन्द्र पिता जी को प्रणाम करने इधर ही आ निकले। यहां आकर कैकेयी द्वारा वनवास जाने का आदेश

मिला। बड़े प्रसन्न हुए। जब सीता जी को मालूम हुआ तो वे भी तैयार होने लगीं। लक्ष्मण भी राम के साथ जाने का आग्रह करने लगे। राम ने बहुत रोका पर वे मानते ही न थे। माता कौशल्या से आशीर्वाद पाकर वे फिर दशरथ के पास आये। यहां कैकेयी ने उन्हें चीर-वल्कल पहना कर वन को भेज दिया। महाराज दशरथ रोने लगे और अचेत हो गये।

नाटककार ने जगह जगह पाठक को रुलाया है। सारी कथा करुण-रस से भरी है। बालकों के लिए इस में अमूल्य शिक्षा है।

पहला दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजभवन

समय—रात

[दशरथ धीरे-धीरे महल में प्रवेश करते हैं]

दशरथ—आज आकाश दिवाली मना रहा है। धरती पर भी दिवाली है। राम के राजतिलक में सबका सहयोग है।—किन्तु राजप्रसाद का यह भाग अँधेरा क्यों पड़ा है? (और आगे बढ़कर) अरे कोई है?

(दासी का प्रवेश)

दासी—इधर से, महाराज इधर से।

दशरथ—लगता है सारी दुनियां का अंधकार यहां आकर जमा हो गया है।

दासी—इधर से महाराज।

दशरथ—यह कैसा उल्टा प्रबंध है?

दासी—(हाथ जोड़े खड़ी रहती है।)

दशरथ—बाहर आँख उठाकर देखो। तारों भरा आकाश पृथ्वी पर उतर आया है।

दासी—(उसी तरह हाथ बाँधे है।)

दशरथ—मालूम नहीं, कल राम का अभिषेक है?

दासी—(स्वीकारात्मक सिर हिलाती है।)

दशरथ—कह दो, अभी कह दो—महलों को जगमगा दें। ओह ! कैसा उल्टा प्रबंध है !

दासी—(हाथ बाँधे खड़ी रहती है।)

दशरथ—राजाज्ञा की इतनी अवहेलना ! प्रबंध की इतनी त्रुटि ! अच्छा, बुलाओ सुमन्त को। मैं पूछूँगा।

(रानी कैकेयी का प्रवेश, वेशभूषा अस्तव्यस्त, आँखों में लाली, मुंह पर आवेश। दासी पीछे हट जाती है।)

कैकेयी—महाराज की भूल है।

दशरथ—मेरी भूल है ! कैसे ? मैंने तो सारे नगर, सारे राज्य में अभिषेकोत्सव मनाने के लिए कह दिया था।

कैकेयी—सारे राज्य के लिए कहा होगा।

दशरथ—पर देखता हूँ कि—

कैकेयी—महाराज देखना चाहते हैं कि अन्तःपुर भी राजाज्ञा से शासित क्यों नहीं होता ?

दशरथ—(हँसते और रानी कैकेयी के मुंहकी ओर देखते हैं)

कैकेयी—यह राजाज्ञा की अवहेलना नहीं है, महाराज।

दशरथ—(हँसते हुए) राजाज्ञा न सही अन्तःपुर की अधीश्वरी की आज्ञा सही। पर यह आज्ञा किस लिए...... ?

कैकेयी—यह बताने के लिए कैकयी बाध्य नहीं। वह कोई लौंडी-बान्दी नहीं। वह कोई धर्षिता-अपहृता नहीं। वह राजनंदिनी है,राज-रानी है, और है—और है राज—

दशरथ—अरे ! तुम तो कुपित हो रही हो ?

कैकेयी—महाराज जो चाहें कह सकते हैं।

दशरथ—पर शायद तुम्हें मालूम नहीं कि कल तुम्हारे राम का अभिषेक है, और उसी उत्सव में यह दीपावली हो रही है !

कैकेयी—मेरे राम का अभिषेक, कल सवेरे—और महाराज ने उसकी सूचना तक देने की आवश्यकता नहीं समझी !

दशरथ—तो क्या सचमुच कुपित हो गई, रानी ? मुझे मालूम न था कि तुम बुरा मानोगी। तुम्हीं बराबर पूछती थीं कि राम को युवराज कब बनाओगे ? तुम्हारी इच्छा के विपरीत कुछ होता तो पूछने की आवश्यकता पड़ती। इसी से, इसी से—

कैकेयी—ठीक ही तो हुआ।

दशरथ—तो अपनी आज्ञा वापस लो। महलों में दीपमाला जगने दो। सारी दुनियां जिस आलोक में नहा रही है उस आलोक से राजप्रांगण को वंचित न करो।

कैकेयी—राजा की आज्ञा से राजरानी की आज्ञा कुछ कम नहीं होती है, महाराज।

दशरथ—राजरानी के सामने राजा की आज्ञा कुछ मूल्य नहीं रखती, ऐसा कहो कैकेयी !

कैकेयी—यह पुरुषों का शिष्टाचार मात्र है। इसमें कुछ सार होता तो महाराज आपकी ओर से अकारण आज्ञा वापस लेने का आदेश न होता। कहो, राजरानी कुछ नहीं। उसका आदेश कुछ नहीं। राजाज्ञा ही सर्वोपरि है। अन्तःपुर में भी आज से राजाज्ञा चलेगी। कहो, कहो, कहते क्यों नहीं महाराज ?

दशरथ—बहुत हो चुका, प्रिये ! जो सदा तुम्हारी इच्छा का दास है उसे ऐसा दोष तो न दो। अन्तःपुर की कहती हो, लो मैं

तुम्हें लिखे देता हूँ। आज से राज्यभर में राजरानी कैकेयी की आज्ञा ही राजाज्ञा समझी जायगी। लो, इस पर अपने हाथ से राजमुद्रा अंकित करो।—परन्तु यह आज्ञा वापस लेने का अनुरोध 'अकारण' मत कहो। (हाथ आगे बढ़ाते हैं)

कैकेयी—मुझे महाराज पर विश्वास नहीं।

दशरथ—क्या कहा? विश्वास नहीं। सूर्यवंशी राजा दशरथ के वचन पर विश्वास नहीं? राजरानी कैकेयी को अपने स्वामी पर विश्वास नहीं?—मेरे कान क्या सुन,रहे हैं, रानी।

कैकेयी—मैं सच कहती हूँ महाराज।

दशरथ—(अकाश की ओर मुंह करके) सुनो, आकाशचारी नक्षत्रो! सुनो। रानी। क्या कहती है? सुनो, निशानाथ! तुम भी सुनो! रघुवंश की यह राजवधू क्या कहती है?

कैकेयी—कैकेयी कभी प्रलाप नहीं करती, महाराज। आप व्यर्थ उत्तेजित होते हैं!

दशरथ—और रानी! दशरथ भी किसी के प्रति अविश्वस्त नहीं।

कैकेयी—कैसे कहूँ?

दशरथ—देवताओं से पूछो। मनुष्यों से पूछो। उन अनार्य राक्षसों से पूछ देखो।—इनके अतिरिक्त जिससे इच्छा हो पूछ लो।

कैकेयी—अपने को छोड़कर और दुनियाँ से पूछने की मुझे जरूरत नहीं।

दशरथ—शांतम् पापम्, शांतम् पापम्। क्या कहती हो प्रिये? रघुवंशी दशरथ अपनी स्त्री के प्रति अविश्वस्त। (कानों पर हाथ रखते हैं)

कैकेयी—सोच देखिये राजन् !

दशरथ—(मलिन और विचारमग्न हो जाते हैं ।)

कैकेयी—कुछ याद आ रहा है ?

दशरथ —नहीं, कुछ भी तो नहीं ।

कैकेयी—बड़े आदमी बड़ी-बड़ी बातों को कहकर आसानी से भुला सकते हैं । इसी में तो उनकी बड़ाई है ।

दशरथ—मैं आज आनन्द में पागल हो रहा हूँ । मुझे कुछ सुध नहीं है । तुम्हीं याद दिलाओ न एक बार !

कैकेयी—यही होगा । यही होगा, महाराज । मैं ही याद दिलाऊँगी ।

दशरथ—हां-हां, तब मैं भी बताऊँगा कि तुम्हारा अविश्वास व्यर्थ है ।

कैकेयी—ऐसा हुआ तो मुझे असीम हर्ष होगा, नाथ !

दशरथ—तो कह डालो ।

कैकेयी—एक नहीं दो-दो वरदानों का वचन देकर आपको इस तरह मुकर जाना क्या शोभा देता है ?

दशरथ—ओहो ! याद आया । याद आया । रानी, मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ । आज कैसे सुन्दर मुहूर्त्त में तुमने उस घटना की याद दिलाई ।

कैकेयी—तो क्या पुरस्कार में केवल धन्यवाद पाकर रह जाना होगा ?

दशरथ—इस पुण्य मुहूर्त्त में मैं कण-कण के लिए ऋण-मुक्त हो जाना चाहता हूँ । तुम्हारी दूरदर्शिता की किस मुख से प्रशंसा करूँ ? तुमने कैसा मंगलमय समय चुना है !—तुम आज दो की जगह चार वरदान माँग लो ।

कैकेयी—(मुस्कराती है ।)

दशरथ—हँसो नहीं; प्रिये ! आज सचमुच मुँह-माँगे वरदान माँग लो । राम के अभिषेकोत्सव के समय मुझे किसी को कुछ भी अदेय नहीं है ।—फिर तुम तो—

कैकेयी—रहने दो । आपको कष्ट होगा ।

दशरथ—बिलकुल नहीं । तुम माँग लो मनमाना माँग लो ।

कैकेयी—मैं जो कहती हूँ ।

दशरथ—और मैं भी कहता हूं । तुम माँग लो । प्राणाधिके, मेरा भी अनुरोध मानो । इतने हर्ष का समय जीवन में फिर कब आयगा ?— माँगती क्यों नहीं, तुम्हें राम की शपथ है मांग लो ।

कैकेयी—महाराज की यही इच्छा है तो— मैं माँगती हूं कि अभिषेक मेरे भरत का हो ।—और, और राम चौदह वर्ष तक वल्कल पहन कर वनवास करें ।

दशरथ—एँ एँ ! क्या कहा ? क्या कहा ? रानी कैकेयी ! प्रिये !

(जीभ लड़खड़ाती है)

कैकेयी—बस ।

दशरथ—भरत की माँ, इतना कटु-कठोर परिहास मैं तुम्हारे मुँह से सुन रहा हूँ !

[गला सूखता है]

कैकेयी—यह परिहास नहीं है राजन्, सत्य है ।

दशरथ—सत्य है कौन कहता है ?

कैकेयी—अभागे राजकुमार की दुखिया माता कहती है ।

दशरथ—भरत की माता, ज़रा मेरे मुँह की ओर देखकर फिर कहो तो जानूँ ।—नहीं, तुम कभी न कह सकोगी ।

कैकेयी—मैं तो कह चुकी। मैं बार बार क्यों कहूँगी ?

दशरथ—तो मैं मान लूँ कि यह परिहास नहीं है ?

कैकेयी—महाराज इसे परिहास कहकर उड़ा दे सकते हैं, पर कैकेयी ऐसे समय हँसी नहीं करती।

दशरथ—परिहास कहकर उड़ा दूँ, और नहीं तो क्या करूँगा ? ये क्या वरदान हैं ? नारी ! ओह, निर्मम नारी !

कैकेयी—मैं भी चाहती हूं कि महाराज परिहास कहकर मेरी बातें उड़ा दें। तब आप अपने धवल यश का झंडा इतना ऊँचा कभी न उड़ा सकेंगे। मैं हवा के साथ दिगन्त में आपकी इस दानवीरता के गीत गुँजा दूँगी। मैं वन की डाली-डाली पर आपकी प्रशस्तियाँ लिखकर छोड़ जाऊँगी। मैं पशु-पक्षियों तक आपकी यह यश-गाथा पहुँचा दूँगी। बिजली की तूलिका से बादलों पर आपकी सत्यवादिता का यह चित्र अंकित कर दूँगी।

दशरथ—कैकेयी ! तुम पिशाचिनी हो।

कैकेयी—राजकुमार होकर भी मेरा भरत जब पथ का भिखारी है तो राजरानी होकर मेरे पिशाचिनी होने में क्या शेष है ? परन्तु, महाराज, आप भी अब यह झूठा आडंबर रख न सकेंगे। आपके कपट-प्रेम की आज परीक्षा हो जायगी।

दशरथ—भरत की माँ ! आज तुम्हें हो क्या गया है ?

कैकेयी—महाराज निश्चिन्त रहें। मैं सब तरह शान्त और स्वस्थ हूँ। मैं आपसे केवल दो-टूक उत्तर चाहती हूँ 'हाँ या न।' केवल 'हाँ याँ न।'

दशरथ—हाँ या न ?

कैकेयी—'हाँ' का मतलब है आपके सारे आयोजन का धूल में मिल जाना, रानी कौशल्या की आशाओं के मंदिर का ढह जाना और प्राणाधिक राम का विछोह। 'न' से झंझट दूर होते हैं। केवल आपके यश में एक धब्बा लग जायगा। सो क्या चाँद में कलंक नहीं होता?

दशरथ—कैकेयी!

कैकेयी—आपके 'न, कह देने से मैं अबला क्या कर सकूँगी? मेरा भरत भी क्या करेगा?

दशरथ—रानी, तुम चाहो जो कुछ कहो पर मेरे भरत को इसमें मत सानो। वह भोला, राम का भक्त—

कैकेयी—बस, बस महाराज! रहने दीजिये। मैं जानती हूँ आप भरत को क्या समझते हैं। तभी ना उसे ननसार में डाल रक्खा है। राम के राज्याभिषेक के समय भी आप जिसे घर बुलाना जरूरी नहीं समझते उस भरत को आप कितना चाहते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है।

दशरथ—भगवान् जानते हैं। (ऊँची सांस लेते हैं)

कैकेयी—भगवान् तो जानते ही हैं। आज मैं भी वही जानना चाहती हूँ।

दशरथ—(आह भरकर) मुझे निश्चय हो रहा है कि तुम अवश्य जानोगी।

कैकेयी—इस अवसर को मैं जाने नहीं दे सकती, महाराज।

दशरथ—वही दीखता है। रघुवंश का विशाल वृक्ष तुम्हारी आँधी में न जाने कहाँ जाकर रहेगा?

कैकेयी—कुछ चिन्ता नहीं। मैं केवल उत्तर चाहती हूँ। मुझे इस समय और कुछ नहीं दीखता है।

दशरथ—हा ! राम ! (धीरे धीरे बैठ जाते हैं)

कैकेयी—इतने व्याकुल होने की कौन बात है ? आप इन्कार कर दें। बस। पर यह नहीं हो सकता, महाराज, कि आप अपने वचन से फिर भी जाएं और सत्यवादी कहलाएं।

दशरथ—रानी ! तुम समझती हो राम को राज्य का मोह है ?

छि:—तो तुम उसे नहीं जानतीं। यदि उसे मालूम हो जाय तो वह ऐसे सैकड़ों राज्य छोड़ कर चला जाय। यदि तुम ज़रा पहले कहतीं तो मैं यह सब करता ही क्यों ? फिर भी तुम्हारी यही इच्छा हो तो भरत का अभिषेक कर दूँगा। परन्तु-परन्तु दूसरी बात, ओह ! दूसरी बात कितनी कठोर है ! क्या अपने प्यारे राम के लिए वनवास का प्रस्ताव तुम वापस न लोगी ?

कैकेयी—मैं और कुछ नहीं जानती।

दशरथ—परन्तु इतना जान लो कि राम का वनवास और मेरा परलोकवास साथ होंगे।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है)

दशरथ—यदि तुम मेरी मौत का आवाहन करती हो, तो करो। मैं तैयार हूँ।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है)

दशरथ—(ठंडी सांस खींचकर) राम, प्यारे राम, हाय ! तुम सबेरे उठकर क्या देखोगे ? राज्य देते देते मैं तुम्हें क्या दे रहा हूँ ? तुम्हारे पिता का कैसा सुन्दर प्यार है ? प्रजा कल राम का कैसा सुन्दर अभिषेक देखेगी ?—ऐ नील आकाश के उज्ज्वल नक्षत्रो ! तुम अस्त मत होना। सूर्यवंश के पितामह आदित्य ! तुम कभी उदय मत होना। परमात्मा करे दुनियाँ इस समाचार को सुनने ही न पाए।

कैकेयी—इस विलाप से तो अच्छा है मुझे मना करदें। मैं यह स्वाँग देखना नहीं चाहती।

दशरथ—रानी ! बबूल बोकर आमों की आशा करना मेरे लिए व्यर्थ है। आज मैं यह समझ रहा हूँ।

कैकेयी—समझ रहे हैं परन्तु मोह नहीं छोड़ सकते।

दशरथ—रानी !तुम मेरे प्राण चाहती हो, मिलेंगे। परन्तु मेरे सामने से हट जाओ। मैं तुम्हारा मुहँ देखना नहीं चाहता। हा, राम ! (गिर पड़ते हैं, आँखें मूँद लेते हैं)

[पट-परिवर्तन]

———

दूसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजमहल

समय—प्रातःकाल

[दशरथ मूर्छित पड़े हैं। एक ओर कैकेयी बैठी है। राम, सुमन्त और वशिष्ठ एक एक करके आते हैं]

राम—पिता जी ! पिता जी !

दशरथ—(आंखें खोल कर राम को देख लेते हैं, फिर बंद कर लेते हैं।)

राम—बहुत कष्ट मालूम होता है।

सुमन्त—विशेष कष्ट है।

वशिष्ठ—अतीव कष्ट है।

राम—क्या कारण है ? रात ही रात में इतना कष्ट कैसे हो गया ? मुझे किसी ने खबर ही न दी।

सुमन्त—कौन जाने ?

वशिष्ठ—कुछ भी तो पता नहीं।

राम—आश्चर्य है। (कैकेयी से) माता, कुछ बताओ तो सही। इस प्रकार आप दुखी क्यों बैठो हैं ?

कैकेयी—(उसी भांति बैठी रहती है।)

राम—यह कैसी बात है माता, आप अनिष्ट से इस प्रकार भयभीत हो कर मौन हो रही हैं। क्या राजवैद्य ने आकर अब तक नहीं देखा ?

कैकेयी—(सिर हिला कर इनकार करती है)

राम—एक बार भी नहीं ? अच्छा मैं अभी बुलाता हूँ।

कैकेयी—(सिर हिला कर मना करती है।)

राम—न बुलाऊं ?

कैकेयी—(धीरे से) नहीं।

राम—क्यों माँ ?—मैं देख रहा हूँ पिता जी को बहुत कष्ट है। वैद्य के बिना—

कैकेयी—(राम को हाथ से रोकती है, और बैठ जाने का इशारा करती है।)

राम—(बैठ जाते हैं। (कैकेयी से कुछ सुनना चाहते हैं)

कैकेयी—राम, महाराज को कोई कष्ट नहीं है।

राम—तो क्या है, माँ ? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ है !

कैकेयी—नहीं।

राम—फिर; जल्दी बताइए माँ। पिता जी की दशा मुझ से देखी नहीं जाती।

कैकेयी—राम, बात यह है कि महाराज को तुम्हारा बहुत मोह है।

राम—यह तो आपका स्नेह और आशीर्वाद है, माँ ! इस समय तो यह बताइए कि महाराज का कष्ट किस प्रकार दूर हो।

कैकेयी—तुम्हारे करने से ही होगा, राम।

राम—कहो माँ, कहो। मेरे सर्वस्व-त्याग से भी यदि पिता जी का कष्ट दूर हो, तो मैं तैयार हूँ।

कैकेयी—तुम बड़े लायक हो, बेटा ! महाराज को तुम से ऐसी ही आशा है।

दशरथ–(गहरी निश्वास के साथ 'राम' कहकर आह भरते हैं)

राम—पिता जी ! पिता जी !—मैं आपका राम आपके पास खड़ा हूँ।

कैकेयी—देखो, राम !

राम—आज्ञा करो, माँ !

कैकेयी—मैं आज्ञा कुछ नहीं करती। मैं तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि महाराज तुम्हें मुँह से कुछ नहीं कहा चाहते हैं। उनका तुम पर अगाध स्नेह है। परन्तु—

राम—कहो, माँ ! कहो।

कैकेयी—महाराज ने मुझे दो वरदान देने कहे थे। मैंने आज जो जी में आया मांग लिया। इसी पर महाराज दुखी हैं। वे नहीं चाहते कि तुम्हारे बजाय भरत को राजगद्दी मिले ! न वे तुम्हारे बनवास की आज्ञा दे सकते हैं,—चौदह वर्ष का बनवास !

राम—इतनी-सी बात ! नहीं, इसके लिए पिता जी यों कभी दुखी न होंगे। कोई और भारी कारण होगा, माँ। अवश्य ही मुझ से कुछ अनुचित बन पड़ा होगा।

कैकेयी—नहीं राम, और तो मैं कुछ नहीं जानती।

राम—अगर यही बात है माँ, तो मैं तैयार हूँ। मैं आज ही वन के लिए जाता हूँ। भैया भरत राज पावें। इससे मेरा रोम-रोम सुखी होगा।

कैकेयी—परन्तु महाराजको यह स्वीकार नहीं। वे एक पलके लिए भी तुम्हारा वियोग नहीं सह सकते।

राम—क्या कहती हो, माँ। आप पिता जी से कहिए कि वनवास ही मेरे लिए सब तरह हितकर है। जहां ऋषियों के आश्रमों में यज्ञ का पवित्र धुआं छाया रहता है। जहां वेद की ऋचाएँ सुनकर कान धन्य होते हैं। जहां की ज्ञान-चर्चा में हृदय के कपाट खुल जाते हैं। जहां के पृथ्वी और आकाश में स्वच्छंदता विराजती है। जहां के जल-वायु में स्वास्थ्य और जीवन बरसता है, ऐसे वनवास का सुयोग बड़े भाग्य से ही मिलता है, माँ।

कैकेयी—परन्तु पिता का स्नेह है, भैया!

राम—स्नेह नहीं मोह है माँ! तुम मेरा हिताहित समझ कर पिता जी को समझा दो ना।

कैकेयी—मेरी बात इस समय महाराज को ज़हर मालूम होती है। इसलिए तुम्हीं समझाओ। जो वंश अपनी सत्यवादिता के लिए विख्यात है, उसके यश में यह धब्बा क्या अच्छा लगेगा। ? सब कहेंगे कि रघुवंश के महाराज दशरथ दो वरदानों के लिए अपने वचन से फिर गये। रघुवंश के लिए यह कितने कुयश की बात होगी!

राम—नहीं, यह कैसे हो सकता है, माँ?

कैकेयी—तुम सर्वथा योग्य हो, राम। तुम समझाओ! महाराज तुम्हारी बात मान लेंगे।

राम—(सुमन्त और वशिष्ठ की ओर देखते हैं। वे सिर झुकाए चुपचाप बैठे हैं।) गुरुदेव! पिता जी को सचेत करिये।

वशिष्ठ—(उच्च स्वर में) महाराज!

दशरथ—(आंखें खोलते हैं। इशारे से राम को पास बुलाते हैं। राम घुटनों के बल झुक जाते हैं। राजा एक हाथ से उनका सर अपनी छाती से लगा लेते हैं। आँखों से आँसू गिरते हैं।) राम बेटा!

राम—पिताजी, आप दुखी न हों। इतनी साधारण बात के लिए आप कष्ट पा रहे हैं। माताजी ने मुझे बता दिया है। यह तो मेरे मन की बात हुई।

दशरथ—(उठना चाहते हैं। सुमन्त सहारा देकर उठाते हैं।) नहीं राम, वत्स ! यह न कहो।

राम—पिताजी, आप जी में विलग न मानें। मैं सच कहता हूं आज ही मेरा भाग्योदय हुआ। आज मेरा जीवन धन्य हो गया। माता और पिता दोनों की आज्ञा का पालन एक साथ करने का सौभाग्य दुनियाँ में किसे प्राप्त होता है ?

दशरथ—बेटा ! आह, भगवान ने तुम्हें कितना सरल बनाया है !

राम—पिताजी ! मुझे आज्ञा दीजिये, मैं माता कौशल्या से बिदा हो आऊँ।

दशरथ—राम, बेटा ! तुम क्या कहते हो ? मैं कभी तुम्हें आँखों से ओट न होने दूंगा। मैं वचन-भंग का अपयश ले लूंगा। सत्य-प्रतिज्ञ की प्रतिष्ठा छोड़ दूंगा, परन्तु तुम से विलग न हो सकूँगा। इस दुष्टा, पापिनी के कुचक्र को कभी सफल न होने दूंगा।

राम—पिताजी, आप तो पुण्यात्मा हैं। मैं आपको क्या समझाऊँ ? पर इतना तो कहूंगा कि आप मुझे पुत्र का धर्म पालन करने से न रोकिये ! आपने जो शिक्षा मुझे बचपन से दी है, उसे आज मेरे आचरण में झलकने दीजिये—समय थोड़ा है, और मुझे आज ही प्रस्थान करना है।

[झुककर राजा के चरण छूकर चले जाते हैं]

दशरथ—राम ! राम !—चला गया !—बुलाओ सुमन्त ! मेरे राम को बुला लो। (वशिष्ठ की ओर मुड़कर) गुरुदेव

तुम्हीं राम को थोड़ा समझाओ।—हा! राम!

(पलंग पर गिर जाते हैं, सुमन्त हाथ का सहार देते हैं)

वशिष्ठ—(दुखित होकर) ओफ्, कितना दारुण व्यवहार है? (रानी कैकेयी से) रानी, तुम क्या करने जा रही हो? क्या तुम्हें इसका भी पता है?

कैकेयी—(कुछ नहीं बोलती है।)

वशिष्ठ—निश्चय ही यह तुम्हारा अविचार है, रानी! राम से पुत्र के लिए तुम्हारा यह व्यवहार कभी उचित नहीं है। देखो, सोच लो। समझ लो। पीछे पछताओगी।

कैकेयी—(निरुत्तर रहती है।)

वशिष्ठ—भरत समझदार हैं। वे भी तुम्हारे इस हठ का कोई मान न करेंगे। तुम नहीं जानतीं इस प्रकार राम का अहित करके तुम उन्हें यश के शिखर पर चढ़ा रही हो। इससे तुम्हारा मनोरथ पूर्ण न होगा।

कैकेयी—ऋषिराज, यश के शिखर पर चढ़ाना भी आप कहते हैं और इसे अनुचित भी बताते हैं।—कहीं आप अभागे राजकुमार भरत की माता के हृदय को बांच सकते।

वशिष्ठ—रानी, तुमने राम को नहीं पहचाना है। तुम अपने भरत को भी नहीं जानतीं। वशिष्ठ का वचन कभी मिथ्या नहीं होता!

कैकेयी—गुरुदेव, क्षमा चाहती हूँ!

वशिष्ठ—मेरी ओर से तुम्हें कोई बाधा नहीं है। रघुवंश के उज्ज्वल इतिहास में यह काला पृष्ठ भी जुड़े बिना न रहेगा, यही सोच है।

(प्रस्थान)

दशरथ—(आँखें खोलकर सुमन्त से) सुमन्त, मालूम पड़ता है गुरुदेव राम को समझाने गये हैं। देखो; तुम अभी भरत को ले आने के लिए शीघ्रगामी रथों पर दूत भेज दो। अभिषेक की सारी सामग्री तैयार रक्खो। आते ही भरत का तिलक कर देना होगा।

सुमन्त—जो आज्ञा महाराज !

दशरथ—परन्तु सुमन्त देखना, कहीं राम वन जाने का हठ न करें। तुम उन्हें रोक देना।—कह देना, महाराज की आज्ञा नहीं है ! उन्होंने मना किया है।

कैकेयी—मेरे भरत को इस अयोध्या में बुलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। सुमन्त, राम को वन जाने से रोकते समय यह भी कह देना कि राजा दशरथ ने आज रघुवंश की प्रतिष्ठा को दुनियाँ की दृष्टि में गिरा दिया है।। आज से रघुवंश का कोई राजा सत्यवादी नहीं कहा जा सकेगा।

दशरथ—सुमन्त, जा रहे हो ?

सुमन्त—जा रहा हूं, राजन्। (जाने को उद्यत होते हैं।)

कैकेयी—राम को यह भी बता देना सुमन्त ! कि रानी कैकेयी आज अयोध्या छोड़े जा रही है। वह घर घर भीख मांग कर खा लेगी पर तुम्हारे आगे हाथ न फैलायेगी। कह देना अब तुम निष्कंटक राज्य भोगो। भरत तुम्हारे मार्ग में कभी न आवेगा।

सुमन्त—(रानी के मुँह की ओर ताकते हैं)

कैकेयी—परन्तु इतना संतोष है कि जाते जाते मैं सत्यवादिता का झंडा नीचे किये जा रही हूँ।

सुमन्त—रानी, ऐसा न कहो।

दशरथ—सुमन्त, जल्दी जाओ। देखो देर न हो।

सुमन्त—जो आज्ञा राजन्। (सुमन्त का प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—अयोध्या का राजमहल

(राजा दशरथ उसी प्रकार पड़े हैं। कैकेयी एक तरफ बैठी है
उसकी दृष्टि द्वार की ओर है। शायद किसी की प्रतीक्षा
में है। भीतर से दासी मंथरा धीरे-धीरे आती है।
कैकेयी मुँह घुमाकर उसकी ओर देखते ही उंगली
के इशारे से उसे पास बुलाती है)

मंथरा—(पास जाकर) आज्ञा महारानी !

कैकेयी—(धीरे से) कौशल्या के यहां क्या हो रहा है ?

मंथरा—सुकेशी को भेजा है। आती ही होगी।

कैकेयी—अच्छा, जाओ।

(जाती है और लौट आती है।)

मंथरा—(कैकेयी के समीप आकर धीरे-धीरे कहती है।) सब ठीक हो रहा है।

कैकेयी—ठीक हो रहा है ?

मंथरा—हाँ, महारानी।

कैकेयी—राम के साथ सीता भी ?

मंथरा—और लक्ष्मण भी।

कैकेयी—लक्ष्मण भी ?

मंथरा—हाँ।

कैकेयी—सच ?

मंथरा—हाँ, महारानी।

कैकेयी—परन्तु सीता और लक्ष्मण के लिए वस्त्र कहाँ हैं? देखो, जाकर अभी तैयार कराओ।

मंथरा—सब कुछ तैयार है, महारानी !

कैकेयी—तैयार है। शाबाश मंथरा, तू देखने में जैसी भोंड़ी है काम में वैसी ही निपुण है।

मंथरा—आप एक बार देख लेतीं।

कैकेयी—देख लिया है। देख लिया है। तेरे प्रबंध पर मुझे विश्वास है।

(राजा दशरथ करवट बदल कर गहरी निश्वास लेते हैं,)
और 'राम, हा ! राम' कहते हैं)

मंथरा—स्वामिनी, एक बार चलकर देख लेतीं।

कैकेयी—चल।

(एक ओर से दोनों जाती हैं। दूसरी ओर से राम,
लक्ष्मण और सीता प्रवेश करते हैं।)

राम—(दशरथ के समीप जाकर) पिताजी !

दशरथ—(करवट लेकर और आँखें खोलकर) आओ वत्स ! (सीता और लक्ष्मण को राम के पीछे देखकर कुछ विचलित-से होकर) वधू जानकी और लक्ष्मण ! तुम सब लोग साथ कैसे ?

राम—पिताजी ! मैंने बहुत समझाया पर ये दोनों हठ पकड़ गये हैं। ये भी मेरे साथ जा रहे हैं।

दशरथ—क्या कहते हो, राम ! जा रहे हैं, कहाँ जा रहे हैं ?—और तुम कहाँ जा रहे हो ? राम, क्या तुम्हें गुरु वशिष्ठ ने कुछ नहीं

कहा ? क्या सुमन्त तुम्हारे पास अभी तक नहीं पहुँचे ?

राम—पिताजी, आपको इस प्रकार कातर होते देखकर मुझे दुख होता है।

दशरथ—राम, बेटा ! तुम से मेरा दुख देखा नहीं जाता। इसीसे तुम कहीं मत जाओ। बुढ़ापे में मुझे सुखी करो।

राम—मैं वही करूँगा पिताजी, जिससे आपको सच्चा सुख मिले और धर्म की रक्षा हो।

दशरथ—राम बेटा, मुझे सुख नहीं चाहिये, धर्म भी नहीं चाहिये अगर वह तुम्हारे बिना प्राप्त होता हो।

राम—पिताजी ! मुझे ऐसा लग रहा है जैसा कि आज आप मेरे मोह में आकर कर्तव्य को भुला रहे हैं। धर्म ही जिसके जीवन का आधार रहा है वह कभी मुँह से निकले हुए वचनों के लिए स्वप्न में भी क्या ऐसा कहेगा ? आप ज़रा सोचिये; आपके इस विचार से महान् रघुकुल की प्रतिष्ठा क्या अप्रतिहत रह सकेगी ?

दशरथ—किसका वचन ? कैसा वचन ? भोले, राम ! मैंने ऐसा कोई वचन नही दिया। क्या कोई अपने प्राण को निकाल कर फेंक सकता है ? यह सब तुम्हारी विमाता का षड्यन्त्र है, उसकी राक्षसी चाल है।

राम—ऐसा नहीं, पिताजी ! आपके मुँह से जो एक बार निकल गया सो निकल गया। मेरे लिए वह परिपालनीय होगया। आपका आज्ञाकारी राम आपके आदेश को आकाशवाणी से भी अधिक पवित्र समझता है।

दशरथ—बेटा ! राम ! क्या कह रहे हो ? मैं समझ नहीं सका। आज मेरे कान बहरे हो रहे हैं। मेरी आँखें अंधी हो गई हैं। मुझे न

कुछ दीखता है न सुनाई देता है।

राम—पिताजी, माँ कौशल्या को देखिये। उन्होंने हँसते हँसते हम लोगों को विदा दी है।

दशरथ—बेटा, कौशल्या देवी हैं।

राम—माँ सुमित्रा ने आग्रहपूर्वक लक्ष्मण को मेरे साथ कर दिया है।

दशरथ—वह धन्य है, राम! पापी और अन्यायी मैं हूँ, जो इतना बड़ा अनर्थ कर बैठा हूँ। बेटा लक्ष्मण! तू पीछे क्यों खड़ा है? आज तेरा वह कोप और दर्प कहाँ गया? क्यों अपना धनुष नहीं खींचता? क्यों नहीं मुझे मार कर इस समस्त कांड को शान्त कर देता? गंभीर और संकोची राम अन्याय और अत्याचार की उपेक्षा कर सकता है, पर तू चुपचाप क्यों खड़ा है? ले, बेटा! इस छाती को अपने नुकीले बाणों से छेद दे!

[कैकेयी का प्रवेश]

कैकेयी—इसकी क्या आवश्यकता है, महाराज! आपके मुँह का एक नकार ही काफी है।—आप इन्कार कर दें। कर क्यों नहीं देते?

राम—माँ, पिताजी ने तो कह दिया। अब मेरा कर्त्तव्य शेष है। सो मैं तैयार हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप का स्नेह वनवास के समय मेरा सहायक हो।

कैकेयी—(मुँह नीचे झुक जाता है। चेहरा मलीन हो जाता है। उस भाव को छिपाने का नाट्य करती हुई) बेटा, तुम जुग-जुग जियो। तुम रघुवंश का मुख उज्ज्वल करोगे।

राम—लो माँ, आज्ञा दो। मेरे पीछे यह मैथिली खड़ी है। यह भी आपका आशीर्वाद चाहती है।

कैकेयी—वधू जानकी! तुम्हें तो जाने की आवश्यकता नहीं। तुम यहीं रह सकती हो।

सीता—(झुककर प्रणाम करती है।)

राम—माँ, भैया लक्ष्मण का भी प्रणाम स्वीकार करो।

कैकेयी—अरे, यह क्या? तुम सब तो अयोध्या सूनी कर देना चाहते हो! मैं तो कठिन कर्त्तव्य वश ऐसा कर रही हूँ। मेरा यह मतलब तो नहीं था।

लक्ष्मण—(आगे बढ़कर सिर झुकाते हैं।)

दशरथ—रानी! अब तो कलेजा ठंडा हुआ।

राम—पिताजी, आप शान्त हों, और मुझे आज्ञा दें।

(मंथराका वल्कल लिए प्रवेश)

कैकेयी—लो बेटा, राम! राजकीय वस्त्र त्याग कर वन के योग्य वस्त्र पहन लो।

राम—अवश्य, अवश्य—माँ, लाओ।

(वस्त्र लेकर पहनने लगते हैं। सीता मुँह छिपाकर रोने लगती है।

दशरथ—धन्य हो, माँ का यह उपहार!

राम—(सीता से) ये वल्कल उठालो और और तुम भी जाकर भीतर बदल आओ। देर क्यों करती हो?

(कैकेयी वल्कल सीता की ओर बढ़ाती है, और सीता लेना चाहती है।)

दशरथ—(गरज कर) अरी पापिष्ठा ! ठहर, यह क्या करती है ? वनवास राम का हुआ है या सीता का भी ? अब क्या तू सब को वल्कल पहनायेगी ?

कैकेयी—(रुक जाती है और राजा के मुँह की ओर देखने लगती है)

सीता—पिता जी, स्वामी के वस्त्रों से बढ़िया वस्त्र पहनने की आप मुझे आज्ञा देते हैं ?

दशरथ—(शान्त होकर सिर झुका लेते हैं ।)

सीता—(कैकेयी के हाथ से वल्कल लेकर भीतर चली जाती है ।)

लक्ष्मण—(आगे आकर वल्कल लेते और पहनते हैं ।)

दशरथ—ओफ़ !

(तकिया पर गिर पड़ते हैं । आँसुओं की धार से तकिया भीगने लगता है ।)

पश्चात्ताप

नाटक के पात्र

कन्हैया	अछूतोद्धार में लगा हुआ एक कुलीन युवक ।
पँचकौड़ी दास	एक ब्राह्मण वैद्य ।
डाक्टर	एक ईसाई डाक्टर जो पहले भंगी था ।
रामदुलारी	वैद्य जी की पत्नी ।
रधिया	एक अछूत कन्या ।

रधिया की माँ, वैद्य जी के साथी, कन्हैया से पढ़ने वाले अछूत विद्यार्थी ।

परिचय

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ग्वालियर के रहने वाले हैं, परन्तु कई वर्षों से लाहौर में रहते हैं। आप उच्च कोटि के कवियों और नाटककारों में से हैं। 'रक्षाबन्धन' 'बन्धन' 'स्वप्नभंग' 'प्रतिशोध' 'शिवा-साधना' 'छाया' 'मंदिर' आदि कई नाटक आपने लिखे हैं जो सारे हिन्दी जगत् में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। आपकी भाषा सरल और मुहावरेदार होती है।

प्रस्तुत एकांकी नाटक का विषय अछूतोद्धार है। जिनको हम अछूत और दलित समझते हैं उनकी सद्भावनाओं को हम लोग बहुत कम जानते हैं। इस नाटक में एक ओर अछूतों की भक्ति,सेवा धर्म, दयाभाव और उठने की इच्छा दिखाई गई है और दूसरी ओर उच्च जाति वालों के अत्याचारों का दिग्दर्शन कराया गया है। पंचकौड़ीदास गांव में वैद्यक का काम करते हैं। वे ब्राह्मण हैं, और अछूतों तथा अछूतों में काम करनेवाले कुलीन लोगों से घृणा करते हैं। उसी गांव में एक भगन की लड़की रधिया जो उच्च जाति के इस अत्याचार का खंडन करती है, हैजे से बीमार पड़ जाती है। रधिया की माँ वैद्य जी से प्रार्थना करने आती है कि वे रधिया को देखकर दवाई दे दें परन्तु वे अछूत के घर जाने से इन्कार कर देते हैं। इधर वैद्य जी का लड़का बीमार है और उन्हें शहर से एक डाक्टर को बुलाना पड़ा है। डाक्टर को हरिजनों के प्रति वैद्य जी के इस व्यवहार से क्रोध आता है और वह रधिया का इलाज करने चला जाता है। वह वैद्य जी को बता देता है कि वह भी जन्म से भंगी है परन्तु अब ईसाई होगया है।

डाक्टर के जाने के बाद वैद्य जी के लड़के की अवस्था फिर बिगड़ जाती है। वैद्य जी रधिया के घर दौड़े आते हैं। भंगी से घिन थी; अब

भंगी को साथ ले जाने के लिए मिन्नतें कर रहे हैं। जिस अछूत स्त्री के घर आने से धर्म नष्ट-भ्रष्ट होने का डर था उसी के घर पर आकर गिड़गिड़ाना पड़ा है। परन्तु डाक्टर इस लिए जाने इन्कार करता है कि वैद्यजी ने रधिया की माँ का अपमान किया। वैद्य जी क्षमा मांगते और पश्चाताप करते हैं, तो डाक्टर साथ चलने को तय्यार होता है।

आज पंचकौड़ीदास के से लाखों भारतीयों को पश्चाताप करने की आवश्यकता है। प्रेमी जी ने बड़े सुन्दर ढंग से हिन्दू जाति के इस अभिशाप को हटाने की ओर इशारा किया है।

पहला दृश्य

[एक गांव के छोटे-से मन्दिरकी सीढ़ियां। मंदिर के अंदर घंटे, झालर और शंख आदि के बजने की आवाज हो रही है। आरती भी गाई जा रही है—लेकिन दूसरी आवाजों में मिलकर वह साफ नहीं सुनाई देती। एक १२-१३ वर्ष की लड़की मंदिर की सबसे निचली सीढ़ी पर बैठी हुई ध्यान लगाकर मन्दिर में से आनेवाली आवाजोंको सुन रही है। लड़की सुंदर भी है, भोली भी है और साफ सुथरी भी। कपड़े बड़े साधारण हैं, कहीं-कहीं फटे भी हैं, लेकिन मैले नहीं हैं। चेहरे पर समझदारी की झलक है—ऐसा जान पड़ता है जैसे वह कुछ पढ़ती लिखती भी है। लड़की का नाम है रधिया। रधिया कुछ सोच में डूबी-सी बैठी है कि इस गांव में अभी-अभी नया आया हुआ युवक—कन्हैया आता है। उसके हाथ में कुछ फूल हैं। रधिया का ध्यान उसकी तरफ नहीं जाता। लड़का ठीक उसके पीछे खड़ा हो कर उसके सिर पर कुछ फूल फेंक देता है। रधिया चौंक कर पास में पड़े एक पत्थर को उठाती है और खड़ी होकर उस फूल फेंकनेवाले को मारना चाहती है कि कन्हैया को देख कर शर्मा जाती है।]

कन्हैया—फूल के बदले पत्थर देती हो, रधिया !

रधिया—देवता पर चढ़ाए जानेवाले फूल तुमने मुझ पर क्यों फेंके।

कन्हैया—इसीलिए कि तुम देवी हो। मनुष्य ही तो सच्चा देवता

होता है, रधिया ! जो मनुष्य की पूजा नहीं करता वह भगवान की पूजा कैसे कर सकता है !

रधिया—मनुष्य की पूजा करने से देवता नाराज़ हो जाते हैं।

कन्हैया—सो क्यों ?

रधिया—मेरे हिस्से की मिठाई यदि तुम खा जाओ तो मुझे क्रोध न आयेगा ?

कन्हैया—तुम्हारी माँ का हिस्सा तुम्हें दे दिया जाय तो तुम्हारी माँ प्रसन्न होगी ना ? मनुष्य भी तो भगवान् की संतान है—जो उसकी संतान की पूजा करता है उससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। अब जाऊं, भगवान् की आरती में भी शामिल हो लूँ।

[कन्हैया जाता है और रधिया की माँ आती है उसके हाथ में डलिया और झाड़ू है।]

रधिया की मां—अरी रधिया, तू यहां क्या कर रही है ? अभी तक झाड़ू ही नहीं लगाई सड़क पर। अरी, पुजारी जी नाराज हो जाएँगे और भगवान के भोग में से हमें कुछ भी नहीं देंगे।

रधिया—जरा भगवान की आरती सुनने लगी थी—फिर कन्हैया भैया आ गये उनसे बातें करने लगी।

रधिया की मां—बेटी, हमारे लिए तो लोगों की सेवा करना ही भगवान की पूजा है। चल झाड़ू लगा।

रधिया—नहीं माँ, आज मैं भगवान के दर्शन करूँगी।

रधिया की माँ—मैं तुम्हें कितनी बार समझा चुकी हूं कि हमारी मन्दिर के भीतर जाकर भगवान के दर्शन करने की औकात नहीं है।

रधिया—क्यों, क्या हम मनुष्य नहीं हैं ?

रधिया की माँ—मनुष्य तो हैं लेकिन नीच जात हैं—ऊँची जात वालों की बराबरी हम कैसे कर सकते हैं ?

रधिया—लेकिन कन्हैया दादा तो कहते हैं कि जो सेवा करते हैं वे ऊँचे आदमी होते हैं—हम सब लोगों की सेवा करते हैं—जैसे माँ बच्चे की सेवा करती है—फिर हम नीच कैसे हुए ? हम मंदिर में, भगवान के दर्शन के लिए क्यों नहीं जा सकते ?

रधिया की माँ—हमारे मंदिर में जाने से मंदिर अपवित्र हो जाता है, बेटी ! हम गंदे काम जो करते हैं -गंदे जो रहते हैं। (वैद्यराज पंचकौड़ीदास आते हैं और सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मंदिर में जाते हैं। वे एक मैली धोती आधी वे पहने हुए हैं और आधा कंधे पर डाले हुए है। बदन उघाड़ा है। एक मैला और मोटा जनेऊ पहने हुए हैं। उनके एक हाथ में फूलों से भरा एक दोना है दूसरे हाथ में जल-भरा लोटा। पंचकौड़ीदास रधिया की माँ और रधिया दोनों पर एक दृष्टि फेंककर मंदिर में घुस जाते हैं।)

रधिया—माँ, हम ऐसे पंडितों से तो अधिक स्वच्छ हैं। ये मंदिर में जा सकते हैं तो हम क्यों नहीं ?

रधिया की माँ—बड़ी जातवाले गंदे रहकर भी पवित्र गिने जाते हैं। बेटा, यह सब कर्मों का फल है। हमने बुरे कार्य जो किए थे इसी लिए भंगी बने हैं—इन्होंने अच्छे कार्य किये इस लिए ये बामन हुए।

रधिया—झूठी बात। यह व्यवस्था इन्हीं की बनायी हुई है। यह इनका अत्याचार है और हमारी बेसमझी। जैसे माँ सब बच्चों को बराबर प्यार करती है—वैसे ही भगवान भी। क्या हम भगवान की संतान नहीं हैं ? क्या हम में भक्ति-भाव नहीं ? क्या हम मनुष्य नहीं ?

रधिया की माँ—हाँ क्यों नहीं ! लेकिन भगवान की आज्ञा भी तो हमें माननी होगी। पंचों की आज्ञा ही भगवान की आज्ञा है। चलो बेटी, हम अपना काम करें।

रधिया—उँ—हूँ—मैं तो आज मंदिर में जाऊँगी।

(एक सीढ़ी चढ़ती है कि ऊपर शोर सुनाई देता है। पंचकौड़ी कन्हैया को धक्के मारता हुआ वाहर ला रहा है।)

पंचकौड़ी—तुम गांधी के चेलों ने धर्म-कर्म को नष्ट करने की ठान ली है। चांडाल रोज़ भंगियों के मोहल्ले में पढ़ाने जाता है और भगवान के मंदिर में घुस आया। जाओ, निकल जाओ। फिर कभी मंदिर की सीढ़ी पर पैर रखा तो सिर फोड़ दूँगा। यह धर्म का मामला है इसमें हम रियायत नहीं कर सकते।

(जोर से धक्का देते हैं। कन्हैया सीढ़ियों पर लुढ़क जाता है—उसके सिर में चोट आती है। रधिया और रधिया की माँ उसे सम्हालती हैं। रधिया अपनी चुन्नी फाड़कर चोट पर पट्टी बाँधती है।)

रधिया—भैया, तुम्हें हमारे कारण बहुत कष्ट मिला।

रधिया की माँ—मैं तो तुमसे पहले ही कहती थी कि हमारे मोहल्ले में मत आया करो। इसे ये ऊँची जातवाले कभी सहन नहीं करेंगे।

कन्हैया—ये लोग अभी समझते नहीं हैं—एक दिन समझ जायँगे।

रधिया—हम लोग इनका काम छोड़ दें तो एक दिन में इनकी बुद्धि ठिकाने आ जाय।

कन्हैया—नहीं रधिया, हम सेवा और प्रेम से ही इन नादानों को रास्ते पर लायेंगे (उठ कर खड़ा हो जाता है) अब मैं ठीक हूँ।

तुम अपना काम करो।

(कन्हैया चला जाता है। एक भगत मंदिर से बाहर निकलता है। उसके हाथ में एक दोना है जिसमें कुछ प्रसाद है, जिसे वह खाता आ रहा है, सीढ़ियों से नीचे आकर वह जूठन रधिया को देता है—लेकिन रधिया लेती नहीं, मुँह फेर कर खड़ी हो जाती है।)

रधिया की माँ—ले ले, बेटी! भगवान का प्रसाद है।

रधिया—जूठन खाने से हैज़ा हो जाता है, माँ। आजकल हैज़ा फैल भी रहा है।

रधिया की माँ—भगवान के प्रसाद का अपमान नहीं करते, बेटी।

(दोना आप ले लेती है। भगतजी चले जाते हैं।)

रधिया—(माँ के हाथ से दोना छीनकर फेंकते हुए) जो हमें नीच समझते हैं उनकी झूठन खाने की हमें क्या ज़रूरत? चलो माँ, यहाँ से चलो।

रधिया की माँ—काम तो कर लें। (झाड़ू लगाने लगती है। रधिया रोष में भरी चली जाती है।)

[मंदिर में से भजन के गाने का शब्द आता है।]

(नेपथ्य में गान)

प्रभु मोरे अवगुण चित न धरो।
समदरसी है नाम तिहारो चाहो तो पार करो।
इक लोहा पूजा मे राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवे कंचन करत खरो।

(झाड़ू लगाते-लगाते रधिया की माँ ओझल हो जाती है।)

[परदा बदलता है]

दूसरा दृश्य

[वैद्यराज पँचकौड़ीदास एक बगिया में गांव के कुछ मित्रों के साथ बैठे हुए हैं। एक व्यक्ति सिल पर भंग घोट रहा है : भंग का सभी सामान मौजूद है।]

भंगघोटनेवाला—वैद्यजी, आपको वैद्यकी में भंग के भी गुण दिये होंगे ना ?

पंचकौड़ीदास—हाँ-हाँ क्यों नहीं। हमारे आयुर्वेद में हरेक फूल-पत्ती, फल-मूल के गुण-दोष दिये हैं। अरे भैया, जहाँ तक हमारी देसी चिकित्सा-विधि की पहुँच है वहाँ तक तो अंग्रज़ी डाक्टरी अभी हज़ार बरस नहीं पहुँच सकती।

एक साथी—लेकिन आजकल सब लोग दौड़-दौड़कर डाक्टरों के पास ही जाते हैं।

पंचकौड़ीदास—कुछ नहीं, यह पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव है। दो अक्षर अंग्रेज़ी के पढ़ गए तो अपने बड़े-बूढ़ों को, देसी वस्तुओं को, देसी रीति रिवाजों को निकम्मा और हीन समझने लगे।

दूसरा साथी—हाँ, पश्चिम की हरेक वस्तु आराध्य बन गई है। फ़ैशन है—फ़ैशन, वैद्य जी !

भंगघोटनेवाला—लेकिन वैद्यजी, भंग के गुण तो आपने बताये ही नहीं।

पंचकौड़ी—भंग क्या है ? वास्तव में यही तो आर्य ऋषियों का सोम-रस था। एक प्याले में स्वर्ग की सैर कर सकते हो। वैद्यक के अनुसार देखो तो कब्ज़को यह दूर करे,बल बढ़ाये, बुद्धि बढ़ाये और भूख भी बढ़ाये।

दूसरा साथी—भूख वाली बात तो हितकर नहीं है। इस राशन के युग में भूख का बढ़ना अत्यन्त दोषपूर्ण है।

(सब हँसते हैं। पंचकौड़ी की पत्नी रामदुलारी आती है)

रामदुलारी—यहाँ तुम्हारी भंग घुट रही है, वहाँ लल्ला का हाल खराब है।

पंचकौड़ी—अरे, तुम जब आओगी—कोई बला लेकर आओगी! सारा मज़ा किरकिरा कर दिया।

रामदुलारी—रहने दो अपना यह मज़ा! जब देखो निठल्लों को बिठाकर भंग घोंटते रहते हो। शर्म नहीं आती! अपने बालबच्चों की भी चिंता नहीं।

एक साथी—क्या हुआ, भाभी जी!

रामदुलारी—हुआ क्या, अपना सिर! मेरा भाग्य ही बुरा है जो इसके घर आई।

पंचकौड़ी—हाँ-हाँ, नहीं तो कोई धन्ना सेठ तुम्हें मिल जाता।

राम दुलारी—तुमने बड़ा नौलखा हार पहना दिया है मुझे। अब यह बताओ घर चलते हो या नहीं ? भंग की तरंग में पड़े रहोगे ?

पंचकौड़ी—बस-एक गिलास चढ़ाकर अभी आया।

भंगघोंटनेवाला—हाँ, भाभी, अब तैयार ही समझो।

दूसरा साथी—हुआ क्या है लल्ला को ?

पंचकौड़ी—अरे कुछ नहीं, मामूली दस्त हैं। साथ ही एक दो

क़ै आ गई तो इन्हें शक हो गया। औरत की जात ठहरी—जल्दी घबरा उाती हैं।

पहला साथी—नहीं वैद्य जी, इनका घबराना ठीक है। आजकल कुछ हैज़े की भी शिकायत सुनी जाती है।

पंचकौड़ी—लेकिन मैं ठीक दवा दे आया हूँ। आयुर्वेद में सब बीमारियों का इलाज है। हैज़े की दवा तो मेरी रामबाण है। हाँ—सचमुच—मेरे नुस्खे लेकर ही तो बड़े बड़े वैद्यों ने अपनी दवाएँ तैयार की हैं।

दूसरा साथी—हाँ, वैद्यजी! आपकी तुलना कौन कर सकता है! यहाँ गांव में पड़े हैं—शहर में होते तो लोग सिर-आँखों पर रखते। हवेलियाँ बन जातीं, हवेलियाँ।

(एक १३-१४ साल की लड़की आती है जो बहुत घबराई हुई जान पड़ती है।)

लड़की—भैया ने फिर क़ै कर दी है। सब कपड़े खराब कर डाले हैं।

पंचकौड़ी—सचमुच तबीयत ज्यादा खराब जान पड़ती है। (एक साथी से) ऐसा करो भैया, अभी दौड़कर शहर जाओ और वहाँ से किसी योग्य डाक्टर को लेकर आओ।

भंगघोटनेवाला—लेकिन, वैद्यजी, उलटे बाँस बरेली को भेजने की क्या ज़रूरत है? आपके रहते डाक्टर की क्या ज़रूरत? भला आप से अधिक वह क्या कर लेगा?

पंचकौड़ी—एक से दो अच्छे होते हैं, भैया! वैसे तो मुझे अपनी चिकित्सा पर भरोसा है फिर भी.........तुम जानते हो ऐसे वक्त पर बुद्धि भी काम नहीं देती। (पत्नी से) चलो, लल्लू के

कपड़े बदल डालो; और देखो, घबराओ मत—भगवान सब ठीक करेगा।

एक साथी—हाँ, भाभी, मैं अभी डाक्टर को लेकर आता हूँ।

(सब जाते हैं ।)

[पट परिवर्तन]

—— ——

तीसरा दृश्य

(एक खुले मैदान में कन्हैया कुछ अछूत कहे जाने वाले लोगों को पढ़ा रहा है। पढ़ने वालों में बालक-बालिकाएं भी हैं—युवक-युवतियाँ भी हैं—एक-दो वृद्ध महाशय भी हैं।)

एक बूढ़ा—भैया, हमारे साथ आप क्यों माथा-पच्ची करते हैं—कहीं बूढ़े तोते भी पढ़े हैं ?

कन्हैया—क्यों नहीं चाचा जी, फ़ारसी के एक बहुत बड़े कवि हुए हैं शेख़सादी, उन्होंने चालीस वर्ष की अवस्था के बाद पढ़ना शुरू किया था। इसी तरह संस्कृत के महाकवि कालिदास ने भी बचपन में कुछ नहीं पढ़ा था। विद्या पढ़ने के लिए कोई भी अवस्था ठीक है !

एक लड़का—(स्लेट दिखाता हुआ) मास्टर जी, यह सवाल नहीं आता।

कन्हैया—(स्लेट हाथ में लेकर, देखकर) अरे यह क्या किया है, २ और २ कितने होते हैं ?

लड़का—जी, चार !

कन्हैया—यहाँ पाँच क्यों लिखे ! तुम ध्यान नहीं देते ! जाओ सवाल को फिर करो (लड़का चला जाता है)

दूसरा लड़का—मास्टर जी, मैं कल से पढ़ने नहीं आऊँगा।

कन्हैया—क्यों घसीटा ?

घसीटा—अम्मी कहती थी कि गांव वाले कहते हैं कि अगर तुम लोग मास्टर कन्हैया लाल से कोई सरोकार रखोगे, उनसे बच्चों को पढ़वाओगे तो गांव से निकाल दिये जाओगे !

एक बूढ़ा—हाँ, ऐसी चर्चा गाँव में है सही। वे कहते हैं कि पढ़-लिखकर ये कमीने लोग हमारी बराबरी करेंगे।

कन्हैया—हाँ, चाचा जी, ये लोग मुझे भी डराते धमकाते हैं। जान से मार देने की भी धमकी भी देते हैं।

दूसरा बूढ़ा—फिर भैया, तुम क्यों हमारे पीछे अपनी जान जोखम में डालते हो ?

कन्हैया—ऊँच जात में पैदा होनेके पाप का प्रायश्चित्त कर रहा हूँ, संसार में न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। विद्या प्राप्त करने का सब को अधिकार है। और सब के साथ एक-सा बर्ताव होना चाहिए। आप सब को समाज में बराबरी का दर्जा मिलना चाहिए। आपको इसकी मांग करनी चाहिए—उसके लिए लड़ना चाहिए।

एक बूढ़ा—जान पड़ता है तुम हमारी आजीविका छिनवाओगे।

(हंसता है)

कन्हैया—ऐसे डरने से काम नहीं चलेगा। जो काम करने का किसी का भी साहस नहीं होता—सब को घिन आती है—ऐसा कठिन काम आप लोग करते हैं। सफाई न हो तो ये ऊँची जातवालों का जीवित रहना भी कठिन हो जाय। इसके बदले में ये क्या देते हैं तुम्हें—बड़ा उपकार दिखाते हैं, चार आने—आठ आने महीने और जूठी रोटियों के टुकड़े। नहीं चाचा, तुम्हे इस अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन उठाना चाहिए।

रधिया—(कन्हैया के पास आ कर) मास्टर जी मैंने एक

कविता लिखी है। (एक काग़ज कन्हैया की तरफ बढ़ाती है।)

कन्हैया—तुम्हीं सुनाओ। गाकर। आजकल तुम खूब अच्छा लिखती हो।

रधिया—(गाकर कविता सुनाती है)

देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है?
जन्म पाया है मुसीबत
में, मुसीबत में जिएँगे।
खून अपना पी रहे हैं
खून अपना ही पिएँगे।
हैं हजारों घाव दिल में
हम उन्हें कब तक सिएँगे।
देखने तस्वीर दिल की कौन दिलमें झांकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया—वाह रधिया! तुमने तो कमाल कर दिया! और सुनाओ।

बत्तियाँ हम विश्व-दीपक
की बने जलते रहेंगे।
आग में पलते रहे हैं
आग में पलते रहेंगे।
खाक होने जा रहे पर
आँख में खलते रहेंगे।
स्वर्ग का मालिक गरीबों को नरक में हांकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

नीचता जीवन हमारा
नीचता करते रहेंगे।
पाप में पैदा हुए हैं
पाप में मरते रहेंगे।
लाल आँखें पुण्य की हम
देख कर डरते रहेंगे।
दोष दिखलाने सभी पर कौन उनको ढ़ाँकता है।
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

देश को आज़ाद करने
चल पड़े नेता हमारे।
स्वर्ग-भू पर आ रहा है
हँस रहे नभ के सितारे।
चल रहे चप्पू हवा में
आ रही नैया किनारे।
कौन इन उजड़े घरों की खाक आकर फाँकता है
देखते सब जिंदगी को, कौन उसको आँकता है॥

कन्हैया—वाह, खूब, जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी। कहो चाचा जी, कितना अच्छा लिखा है रधिया ने। कौन कहता है कि आप लोगों में बुद्धि नहीं होती। अवसर मिले तो आप लोग बड़े-बड़े काम कर सकते हैं। अच्छा, अब आज हमारा स्कूल ख़तम होता है।

(सब उठकर चले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(पंचकौड़ीदास के मकान के बाहर । रधिया की माँ बदहवास सी आती है ।)

रधिया की माँ—(पुकारती है) वैद्य जी महाराज ! वैद्य जी महाराज !!

(अंदर से पंचकौड़ी और डाक्टर नवनीतराय बाहर निकलते हैं ।)

पंचकौड़ीदास—महाराज, बच्चे की दशा कैसी है ?

डाक्टर—मैंने इंजेक्शन लगा दिया है । बच्चा बच जायगा ! चिंता न कीजिए ।

पंचकौड़ीदास—परमात्मा आपको सुखी रखे ।

डाक्टर—अच्छा देखो । दवाई में जितना पानी मैंने मिलाया है इससे अधिक न मिलाइयेगा ।

रधिया की माँ—वैद्य जी, मुझ पर कृपा करो । मेरी रधिया को हैज़ा हो गया है ।

पंचकौड़ी—हैज़ा हो गया है तो दवा ले जा ।

रधिया की माँ—ज़रा देख लेते तो

पंचकौड़ी—मुझे भी कन्हैया की तरह भ्रष्ट समझ लिया है तूने । अरे, ब्राह्मण का बेटा भंगी के घर कैसे जायगा ?

रधिया की माँ—एक जान का सवाल है । मैं आपके पैरों पड़ती हूँ ।

(पैरों पर गिरना चाहती है। पंचकौड़ा चौंककर दूर हो जाते हैं)

डाक्टर नवनीतराय—(जो अभी तक चुपचाप इस घटना को देख रहे थे—कुछ मुस्कराते हुए बोलते हैं) क्या बात है वैद्य जी, ऐसे चौंके क्यों ? क्या साँप काटने आया है ?

पंचकौड़ी—अभी नहाना पड़ जाता । इन लोगों ने धर्म-कर्म सब छोड़ दिया है।

डाक्टर—अच्छा, आप भंगियों को नहीं छूते ?

पंचकौड़ी—हम तो इनकी छाया से भी बचते हैं।

डाक्टर—(मुस्कराते हुए) आपको पता है, मैं कौन हूँ ?

पंचकौड़ी—आप...आप ठहरे बड़े आदमी...

डाक्टर—मै भी जात का भंगी हूँ...

पंचकौड़ी—भंगी...?

डाक्टर—हाँ,भंगी। जब तक भंगी रहा तब तक लोगों ने मुझे इसी तरह ठुकराया जैसे इस ग़रीबनी को आप ठुकरा रहे हैं। मैं जब तक हिन्दू था, भगवान का भक्त था, चोटी रखता था, भजन गाता था तब तक अछूत था। ईसाई बन जाने से मानों मेरी काया ही बदल गई। आप लोग अब मेरे पैरों पड़ते हैं—घर में बुलाते हैं—मेरे हाथ की दवा पीते हैं। [रधिया की माँ से] चलो बहन, मैं तुम्हारी बच्ची का इलाज करूँगा।

[डाक्टर और रधिया की माँ चले जाते हैं।
पँचकौड़ी हकाबका होकर रह जाता है।]

(एक मिनट के बाद)

पंचकौड़ी—सुनती हो, ललुआ की अम्माँ !

पंचकौड़ी की पत्नी—[आकर] क्या बात है —क्या होगया ? क्यों शोर मचा रखा है ?

पंचकौड़ी—अरी, अपना तो धर्म नष्ट हो गया! इन अंग्रेज़ी कपड़ों में पता ही नहीं चला कि डाक्टर भंगी था।

पंचकौड़ी की पत्नी—भंगी!

पंचकौड़ी— हाँ भंगी! वह दवा फिंकवा दो।

पंचकौड़ी की पत्नी—लेकिन दवा से तो बच्चे को कुछ आराम है। धर्म क्या बच्चे से भी ज्यादा प्यारा है फिर गांव वाले क्या जाने कि यह डाक्टर भंगी था। बात यों ही दबी रहने दो।

पंचकौड़ी—वह चुड़ैल रधिया की माँ सब जान गई है। वह गांव भर में फूँक देगी।

पंचकौड़ी की पत्नी—उसे दो रुपए पकड़ा कर उसका मुँह बंद देना। इन कमीनों का क्या? दो पैसे में इनकी इज्जत-आबरू सब छीन लो।

पंचकौड़ी—नहीं, अब ये ऐसे नहीं रहे। उस कन्हैया ने इन सब को बिगाड़ दिया है।

[अंदर, से आवाज आती है। 'अम्मा-ओ-अम्मा ?'
दोनों अंदर चले जाते हैं।]

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

(स्थान—रधिया का मकान। रधिया एक चारपाई पर रोगी की हालत में लेटी हुई है। कन्हैया पास बैठा हुआ है। मकान में गरीबी के चिन्ह तो हैं—लेकिन हर तरफ़ साफ़ सुथरापन है।)

रधिया—जी बड़ा घबराता है, कन्हैया!

कन्हैया—घबराओ नहीं, रधिया! माँजी पँचकौड़ी के यहाँ गई हैं— वह आकर दवा देगा।

रधिया—वह चाण्डाल हमारे घर कभी नहीं आयगा। मैं तो उसकी दवा खाऊँगी भी नहीं। मुझे उसकी सूरत से घिन आती है।

कन्हैया—किसी से घृणा करना अच्छा नहीं, रधिया!

रधिया—वे लोग भी तो हमें धिक्कारते हैं, भैया?

कन्हैया—यह हमारी जाति का दुर्भाग्य है, और क्या?

(डाक्टर नवनीतराय और रधिया की माँ आते हैं।)

रधिया की माँ—बेटी, भगवान को सब की चिंता है—देखो ना देवदूत की तरह डाक्टर जी हमारे यहाँ आ गए हैं।

डाक्टर—(रधिया की परीक्षा करता हुआ) घबराओ नहीं बेटी! मैं तुम्हें जल्दी अच्छा कर दूँगा। (रधिया की माँ से) थोड़ा पानी गरम करो। इंजेक्शन लगाना होगा। (डाक्टर इंजेक्शन की तैयारी करता है। रधिया की माँ चली जाती है।)

डाक्टर—(कन्हैया को देख कर) जान पड़ता है आपको कहीं देखा है।

कन्हैया—आप शायद लाहौर से आए हैं? मैं वहीं का रहनेवाला हूँ।

डाक्टर—मेरे एक साथी डाक्टर की शकल आपसे मिलती है। वे बेचारे फ़ौजी नौकरी में चले गए और लौट कर नहीं आए।

कन्हैया—हाँ, मेरे एक भाई डाक्टर थे। फ़ौजकी नौकरी में भी थे। उनका कोई समाचार नहीं मिला।

डाक्टर—वह बचपन से मेरे मित्र थे। तुम नहीं जानते—मैं भी इन्हीं अछूत कहे जाने वालों में था—लेकिन लोगों के अत्याचारों ने मुझे तंग कर दिया। ईसाई हो जाने पर अब सभी मुझे आदर देते हैं।

कन्हैया—लेकिन अछूत से ईसाई हो जाना तो इस बीमारी का इलाज नहीं, डाक्टर साहब! हमें तो ऊँची जातिवालों के हृदय बदलने की और अछूत कही जाने वाली जातियों का रहन-सहन बदलने की ज़रूरत है। मेरे जैसे पगलों को दुतरफ़ा लड़ाई करनी पड़ती है—इधर इनकी गिरी हुई आत्मा को उठाना पड़ता है— उधर उनके अत्याचारी हृदय को बदलने की कोशिश करनी पड़ती है।

डाक्टर—अर्थात् आप दोनों का सुधार कर रहे हैं।

(रधिया की माँ पानी लेकर आती है। डाक्टर इंजेक्शन लगाता है। इतने में पचकौड़ी आता है)

पंचकौड़ी—(डाक्टर से) डाक्टर साहब! मेरे लड़के की हालत फिर बिगड़ गई है। आप इसी समय चलने की कृपा करें।

डाक्टर —लेकिन मैं तो भंगी हूँ—और मेरी दवा मे तो आपका धर्म...

पंचकौड़ी—मुझ पर दया करो डाक्टर जी! मैं भूल पर था।

डाक्टर—आपके घर जाने से मेरा धर्म नष्ट होगा। मैं नहीं जाऊँगा। आपने मेरी एक बहन का अपमान किया है।

रधिया की माँ—वैद्य जी ने मेरे घर आकर अपना धर्म तो भ्रष्ट कर ही लिया।

डाक्टर—वैसे तो मुझे अपने घर बुलाकर और छूकर ही इनका धर्म जाता रहा।

पंचकौड़ी —महाराज, क्षमा!

रधिया— मनुष्य का धर्म दया करना है—और डाक्टर का विशेषकर। ये अपना धर्म भूल गए लेकिन आप अपना धर्म नहीं भूलिए। जाइए—इनके लड़के के ज़रूर प्राण बचाइए।

कन्हैया—[पंचकौड़ी से] देखा, जिन्हें आप नीच कहते हैं उनका हृदय कितना ऊँचा होता है?

डाक्टर—लेकिन वैद्य जी, आप मेरी बहन के पैर छूएँ, तभी मैं आपके घर चलूँगा।

(पंचकौड़ी रधिया की माँ के पैरों में गिरने लगता है। रधिया की माँ हट जाती है।)

रधिया की माँ—आप क्यों मुझे पाप में घसीटते हैं? वैद्य जी! कुछ भी हो हमारे लिए तो आप सदा बड़े हैं।

कन्हैया—[वैद्यजी को उठाता है] सुबह का भूला शाम को भी घर लौट आए तो वह भूला नहीं कहलाता।

[पटाक्षेप]

रजनी

नाटक के पात्र

१. रजनी	एक स्वतंत्रता-प्रिय, गंभीर, कुमारी युवती।
२. कनक	एक सतत प्रसन्न कुमारी युवती, रजनी की सखी।
३. आनंद	कनक के भाई। निर्भीक, शिकारी, वीर।
४. केसर	रजनी की नौकरानी।
५ मंगल	रजनी का नौकर

परिचय

इस नाटक के लेखक डा० रामकुमार वर्मा एम० ए०, पी-एच० डी०, हिन्दी के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और आलोचक हैं। आपको कई रचनाओं पर पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं! आप प्रयाग विश्वविद्यालय में हिन्दी साहित्य के अध्यापक हैं। "पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई' 'चारुमित्र' 'विभूति' आदि एकांकी नाटकोंके संग्रह आपके छप गये हैं। इनमें से अधिकतर नाटक रंगमंच पर खेले भी जा चुके हैं।

'रजनी' नाटक का सर्वप्रथम अभिनय प्रयाग विश्वविद्यालय की महिला सभा के वार्षिकोत्सव पर १९४१ में हुआ था। रजनी गंभीर स्वभाव की एक शिक्षिता स्त्री है। उसे पुस्तकों से बहुत प्रेम है और वह आजकल के अनेक युवक-युवतियों की तरह चाहती है कि समाज के बन्धनों से स्वतंत्र होकर अकेले में जीवन बिताये। वह परिवार में रहना नहीं चाहती। उसका पिता उसे छोड़ कर चला जाता है। उसकी सहेली कनक जिसे रजनी रूढ़ियों की दासी समझती है, वापस घर जाने वाली है। कनक का भाई आनन्द भी रजनी के विचारों से सहमत है परन्तु वह यह नहीं मानता कि जब तक स्त्रियां अपनी रक्षा आप न कर सकें वे समाज से निरपेक्ष रह सकती हैं।

पिता और सखी से विलग होकर रजनी उदास हो जाती है। अकेलापन उसे काटने को दौड़ता है। उसे रात भर नींद नहीं आती; पड़ोस में एक असहाय बुड्ढे की लड़की को डाकू उठा ले जाते हैं। रजनी सहम जाती है और मन ही मन अपने किये पर पछताती है। इतने में आनन्द यह समाचार सुना जाता है कि उसने डाकुओं से बूढ़े की

लड़की को बुलवा लिया है। रजनी को विश्वास हो जाता है कि स्त्री के लिए परिवार से अलग रहना असम्भव सी बात है। वह निर्णय करती है कि मैं भी कनक के साथ घर जाऊँगी। स्त्री, पिता, पति, पुत्र तथा पड़ोसी की सहायता के बिना अपनी रक्षा तब तक नहीं कर सकती जब तक वह शक्ति की देवी, भैरवी या दुर्गा, न बन जाय।

युवकों के लिए भी इस में शिक्षा है, प्रत्येक युवक का कर्तव्य होना चाहिये 'विपत्ति में लोगों की रक्षा करना, आपत्तियों का सामना करना, जिंदगी से लड़ना, समाज को ऊपर उठाना।'

नाटक की भाषा सरल, मँजी हुई और चलती हुई है।

[काश्मीर प्रदेश। एक पहाड़ी का समतल भाग जैसे सौंदर्य साकार हो गया है। चारों तरफ फूलों के पौधे और लताएं। एक संभ्रांत परिवार यहां कुछ दिनों के लिए वायु-परिवर्तनार्थ आया था। परिवार में वृद्ध पिता, युवती पुत्री, दो नौकर और एक नौकरानी थे। आज दोपहर वृद्ध पिता, एक नौकर के साथ, घर लौट गए। अब यहां पर केवल पुत्री, एक नौकर और एक नौकरानी है। युवती का नाम है रजनी। अठारह वर्ष के लग-भग उसकी आयु होगी। गौर वर्ण, सुन्दर मुखमुद्रा और दुबला शरीर। वह सफेद सिल्क की साड़ी पहने हुए है। माथे में बिंदी और अन्य साधारण शृंगार। उसका कुछ गम्भीर व्यक्तित्व है।

रजनीके तम्बूसे कुछ दूर पर एक दूसरा परिवार ठहरा हुआ है। उस परिवार में भी एक युवती है उसका नाम है—कनक। आयु लग-भग बराबर ही है। यह नीली रेशमी साड़ी पहने हुए है और फूलों से अपना शृंगार किये है। ज्ञात होता है,वह वनबाला है। प्रसन्नता की रेखा ने उसके मुख को खिला दिया है। कनक और रजनी में मित्रता हो गई है। दोनों ही प्रवास में हैं और समीप रहनेके कारण दोनों में परिजनों का सा स्नेह हो गया है। कभी-कभी कनक रजनी के यहां आकर समय बिताने के लिए बैठ जाती है। रजनी कनक के यहां अपेक्षाकृत कम जाती है। किन्तु जब दोनों मिलती हैं तब दोनोंमें प्रायःकुछ विवाद छिड़ जाता है।

आज रजनी अपने तंबूके एक बड़े कमरेमें बैठी है। कमरेमें

सजावट है। नीचे कालीन बिछा हुआ है। बीचोंबीच एक टेबल है जिस पर फूलदान रक्खा है। कमरे में दो-तीन कुर्सियां पड़ी हैं। एक कोने में सफेद चादर से सजा हुआ पलङ्ग है। पलंग के समीप अमलारी में पुस्तकें सुंदरता क साथ सजी हैं। अलमारी पर हाथीदांत और संगमरमर की कुछ मूर्तियां रक्खी हैं। अलमारी के समीप एक टेबल और कुर्सी है जिस पर बैठ कर रजनी कभी-कभी लिखती पढ़ती है। एक कोने में सितार टंगा हुआ है। उसी के समीप एक घड़ी है जिसमें रात के नौ बजे हैं। घड़ी के पास ही रजनी के पिता का एक तैलचित्र लगा हुआ है। उसके नीचे एक अंगीठी है जिसमें अंगारे दहक रहे हैं।

पिता के चले जानेसे रजनी कुछ मलीन है यद्यपि वह आत्म-विश्वास से अपने को सँभाले हुए है। वह इस समय पुस्तक पढ़ रही है। ध्यान में मग्न है। धीरे-धीरे कनक आती है। उसके हाथों में फूलों की एक डलिया है। उसने अपना सारा शरीर फूलों के आभूषण से सजाया है। वह चुपके से रजनी के पीछे आकर उसके सिर पर फूल बरसा कर हंस पड़ती है। रजनी चौंक कर उसकी ओर देखती है।

रजनी—ओह !...कनक... !

कनक—इसी फूलों के देश काश्मीर में आकर भी पढ़ना।

र०—(अंगड़ाई लेती है) आओ,बैठो। (पुस्तक बन्द करती हुई) और क्या करूं कनक।

क०—(बैठते हुए) काम की कुछ कमी है रजनी ? हवा के झोंकों से झूमती हुई सफेदा की टहनियों को देखा है ? खुशी से झूमते रहना उनका काम है मानसबल की मछलियों को देखा है ? लहरों की लंबी कोरों में चितवन की तरह मचलती हैं।

र०—मैं मछली नहीं हूं कनक।

क०—सो वो एक बंगाली भी कह सकता है। लेकिन मैं कहती हूं कि वे मछलियां अच्छी हैं जो किताबें नहीं पढ़तीं, गम्भीरता से कुर्सी पर नहीं बैठतीं। जानती हैं कि भगवान ने जो छोटा सा जीवन दिया है उसमें खेलना और खुश रहना—बस यही दो बातें हैं।

र०—अगर यही होता तो दुनिया में कुछ काम ही न हुआ होता। वह एक महफिल हो जाती और जो जितने जोर से हँसता वह उतना ही बड़ा आदमी होता।

क०—मूर्खता से हँसना तो रोने से भी बुरा है रजनी। उससे तो तुम्हारी गम्भीरता अच्छी! लेकिन जीवन का आनन्द लेना जीवन को पहचानना है। अच्छा यह देखो, यह फूल है। (फूल हाथ में लेती है) जरा इसे पैरों से कुचल दोगी ? (पैरों के पास फेंकती है।)

र०—वाह, ऐसी सुन्दर चीज पैरों से कुचली जा सकती है ? (फूल कनक के केशों में लगाती है।)

क०—यही तो तुम कर रही हो रजनी ! यह जीवन फूल की तरह खिला हुआ है; इसे तुम गम्भीरता के पैरों से कुचल रही हो, धूल में मिला रही हो।

र०—लेकिन कनक, तुम समझती हो कि इस जीवन के फूल में कांटे नहीं हैं ?

क०—होंगे, उन्हें निकाल कर फेंक दो। लेकिन तुमने तो जीवन के फूल को ही कांटा बना रक्खा है। गंभीर, मौन, उदास—तुम्हारी ये सूरतें तो जैसे जीवन के दिल में त्रिशूल की तरह चुभी हुई हैं। अगर ऐसी बात है तो यह सितार क्यों यहां रख छोड़ा है।

र०—पिता जी मेरे लिए लाये थे। मुझे अच्छा ही नहीं लगा। मैं ने सब तार इसके तोड़ डाले।

क०—बहुत अच्छा किया। मैं भी अगर एक प्रार्थना करूं, मानोगी ?

र०—क्या ?

क०—ये किताबें मुझे दे सकती हो ? थोड़ी देर के लिए ?

र०—क्यों ?

क०—मैं इन्हें खूबसूरती के साथ नहलाना चाहती हूं !

र०—आः; क्या कह रही हो।

क०—नहीं, शायद इन्होंने कभी स्नान नहीं किया। निखर उठेंगी।

(मंगल किताबों का ढेर लेकर आता है।)

मं०—सरकार ये किताबें बाहर पड़ी थीं। इन्हें अंदर रख दूं।

र०—मंगल !...अच्छा, इन्हें उस कोने में सजा दे।

(मंगल किताबें सजाकर रखने लगता है)

क०—यह किताबों का 'प्रोसैशन' कहां से आ रहा है ?

र०—प्रोसैशन ? (किंचित हँसकर) कुछ नहीं। शाम को तनू से बाहर पढ़ रही थी। वहीं ये किताबें रह गई थीं।

क०—शाम को भी पढ़ना ! तुम तो रजनी, एक काम करो। सारी किताबों को अपने कपड़ों पर छपवा लो। कहीं भी जाना हुआ, किताबों को पहने हुए जा रहे है ! किताबों को उठाने-रखने के कष्ट से बच जाओगी। जिस विषय को पढ़ना हुआ उसी विषय की साड़ी पहन ली।

र०—कनक, आज मैं उदास हूँ और तुम बातें गढ़ती जा रही हो।

क०—तुम उदास क्यों हो ? इसी लिए ठीक बातें नहीं कर रही हो !

र०—बहुत कोशिश करती हूँ कि उस पर सोचूँ ही नहीं लेकिन··· उदासी आ ही जाती है।

क०—क्यों ?

र०—आज पिताजी घर वापस चले गये।

क०—किस लिए !

र०—मैंने उन्हें नाराज़ कर दिया।

क०—नाराज़ कर दिया ?

र०—हाँ, नाराज़ कर दिया। उनका अपमान कर दिया।

क०—अपमान कर दिया ! कैसे ?

र०—मैंने अपने जाने तो नहीं किया, लेकिन उनके ख्याल से अपमान हो गया।

क०—किस बात से ?

र०—मैंने उनसे कहा था—पिताजी, दुनियाँ बहुत धोकेबाज़ है। बहुत बनी हुई है। उसमें सिर्फ़ स्वार्थ ही स्वार्थ है। भाई भाई में स्वार्थ है। पुरुष और···

क०—शायद तुमने यह भी कहा होगा कि पिता पुत्री में भी स्वार्थ है।

र०—हाँ, यह भी कहा। वे कहने लगे—मेरा क्या स्वार्थ है ? मैंने कह दिया कि मेरे योग्य होने से आपकी चिंताएँ कम हो जायँगी और समाज में आपकी मुश्किलें आसान हो जायँगी।

क०—वह ठीक नहीं है, रजनी !

र०—ठीक क्यों नहीं ? (उठ खड़ी होती है ।) लड़की के ख़राब निकल जाने पर किस पिता ने उसका तिरस्कार नहीं किया ? पिता तो ऐसी लड़की का मुँह देखना भी पसंद नहीं करता। अगर आज मैं अपनी मर्यादा छोड़ दूँ तो पिताजी का प्रेम क्या बालू की दीवार की तरह एक मिनट में नहीं गिर पड़ेगा ? फिर वह प्रेम कहाँ रह गया ? और सुनो कनक, यह सारी चीज़ें समाज ने मनुष्य को दी हैं—ऐसे समाज ने जो ज़ंजीरों से कसा हुआ है, पुरुष स्त्री पर अधिकार दिखलाता है जैसे जीवन में अधिकार के सिवाय कुछ है ही नहीं। जीवन तड़पता है और अधिकार उस पर हँसता है, कनक ! अगर यह अधिकार न होता तो क्या स्त्री पुरुषका सत्कार न करती ? पुत्र पिता का आदर न करता ?

क०—ठीक है, लेकिन रजनी ! तुम जैसे सभी तो नही हैं। कहीं पुत्र पिता को पीट देता या स्त्री पति से कहती—मेरी बिना आज्ञा ऑफ़िस मत जाओ—यूनिवर्सिटी में पढ़ाने मत जाओ।

र०—तो ऐसा क्या अब नहीं होता ? लोगों को ऑफ़िस में देरी हो ही जाती है यूनिवर्सिटी में लड़के बैठे रहते हैं और प्रोफ़ेसर ठीक वक़्त पर आ नहीं सकते।

क०—इसीलिए तो मर्यादा की सख़्त ज़रूरत है। "अथारिटी" का काम यही है। संसार के काम को चलाने लिए अधिकार की आवश्यकता है।

र०—लेकिन उसमें जीवन का उत्साह जो ख़राब हो जाता है, कनक ! पुत्र बिना किसी शासन के जो प्यार करता वह तो हृदय से उमड़ता हुआ प्यार होता। स्वभावतः स्त्री जैसा प्यार करती,

क्या उसी तरह का प्यार एक डरी हुई, दबी हुई, स्त्री करेगी ? यह समाज का अन्याय है, कनक !

क०—इसे अन्याय नहीं कह सकती। बंधन तो इसलिए चाहिए कि उससे आदमी स्वतंत्र हो सके। अपनी बेतरतीबी से बढ़ती हुई इच्छाओं को रोक कर वह उन्नति के रास्ते पर क्या नहीं बढ़ सकेगा ? तुम एक पक्षी को देखती हो ? वह केवल अपने दो पंखों के बंधन में बँधा हुआ है लेकिन उन्हीं बंधनों से वह सारे आकाश की हज़ारों कोसों की दूरी स्वतंत्रता से पार कर जाता है। रजनी ! बंधन को उन्नति के रास्ते में रोड़ा मत समझो। बंधन को स्वतंत्रता का सहायक समझो।

र०—ये सब कवि की कल्पनाएँ हैं।

क०—तो इसीलिए तुम्हारे पिताजी नाराज़ हो गये ?

र०—नाराज़ क्या हुए, झुँझलाकर रह गये। मैंने कहा—पिताजी, मैं अकेली रहना चाहती हूँ।

क०—पिता जी ने क्या कहा ?

र०—उन्होंने कहा—बेटी, माँ तो तेरी छुटपन में ही चली गई थी। अब तू ही एकमात्र मेरा सहारा थी सो तू ऐसी बात कहती है !

क०—उस वकत पिताजी की आँखों में आँसू ज़रूर रहे होंगे।

र०—हाँ, उनकी आँखें कुछ गीली ज़रूर हो गई थीं।

क०—तो तुम अकेली रहना चाहती हो ?

र०—हाँ, मैं रहके देखना चाहती हूँ।

क०—कबतक ?

र०—कनक, समाज मुझे अच्छा नहीं लगता। माँ का प्रेम मैं जानती नहीं। मुझे समझने का अवकाश पिताजी को है नहीं।

मैं तो जीवन से ऊब रही हूँ। चाहती हूँ कि किसी एकान्त स्थान में सोचूँ कि मैं क्या करूँ। मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता, कनक। मैं ही तो पिताजी को अपने साथ यहाँ लाई थी, आबहवा बदलने के बहाने। मैंने अपने मन में सोच लिया था कि उन्हें यहाँ से वापस कर दूँगी।

क॰—तो अब यहाँ तुम्हारे साथ कौन है ?

र॰—केसर और मंगल।

क॰—नौकरानी और नौकर, केवल !

र॰—हाँ।

क॰—तो यहाँ अकेली रहकर क्या करोगी ?

र॰—पढ़ूँगी। सोचूँगी। मुझे ऐसा मालूम होता है कनक, कि जीवन में कोई नयापन नहीं है। पुराने ज़माने से आदमी जैसा रहता चला आया है, उसी तरह वह रहता है। उसमें सारी वस्तुएँ बासी हो गई हैं मुझे उनसे एक तरह की दुर्गंध आ रही है। जीने के ढंग में कोई नयापन नहीं है। इसीलिए मैंने स्कूल की नौकरी छोड़ दी।

क॰—स्कूल की नौकरी छोड़ दी ! अब पिता जी को भी छोड़ दिया। विवाह तो अभी हुआ नहीं अन्यथा आगे चलकर उन्हें भी······

र॰—कुछ नहीं होने का, कनक। मैं तो देखती हूँ कि परिवार में डूबा हुआ आदमी कुछ नहीं कर सकता। जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करता हुआ सोता है, जागता है। उसे विवाह करना पड़ता है, बच्चों का भरण-पोषण करना पड़ता है। वृद्ध होना पड़ता है और मर जाना पड़ता है। एक ही रास्ता, एक

ही चाल, एक ही दूरी। मुझे इस से घृणा हो गई है, कनक। मैं यह कुछ नहीं चाहती।

क०—तो रजनी, तुम चाहती क्या हो ?

र०—मैं क्या कहूँ कि क्या चाहती हूं ! मैं समाज का बंधन नहीं चाहती। मैं ममता और मोह के बंधनों को तोड़ कर स्वतंत्र विचारों में विश्वास रखती हूँ। कनक, जब ऐसा होगा तो संसार कितना अच्छा होगा !

क०—बहुत अच्छा होगा। पिता पुत्री से कहेगा, घर चलो। पुत्री कहेगी—पिताजी, नमस्कार । वह पुरुष के बदले पुस्तकों से प्रेम करेगी। हँसने खेलने के बदले गम्भीर रहेगी, कहेगी—(गाल फुलाकर) मैं समाज का बंधन नहीं चाहती।

र०—मैं तुम पर दया करती हूं, कनक, तुम क्या समझो ? रूढ़ियों में बंधी हुई कनक, तुम क्या समझो कि स्वतंत्र विचार क्या होते हैं। अंध-विश्वासों की ज़ंजीरों में तुम्हारे प्राण भी कस गये हैं। बरसों की दासता में पड़ी हुई स्त्री इन बातों को देर में समझेगी, तुम अभी नहीं समझ सकती। जाओ, फूलों के गजरे बनाओ और दुलहिन बनो।

क०—रजनी, अब इस बकझक को छोड़ो। बोलो, तुम यहां कब तक रहोगी।

र०—कह तो चुकी हूँ, हमेशा।

क०—अकेले ?

र०—और क्या ? सोचूंगी, समझूंगी, पढ़ूंगी कि समाज को कैसे बदलना चाहिए। बी० ए० पास करने के बाद मैंने अपना सारा समय यही सोचने में लगाया है। हमारे समाज में सब से पहिले पिता लड़की को कमज़ोर बना देता है वह समझ लेता है कि लड़की का विवाह

करना है। उसे वह पढ़ाता है लिखाता है। यह सब इसलिए कि लड़की का विवाह अच्छी जगह कर सके और फिर वह लड़की पति के घर वालों की दासी हो जाय; उन्हें खाना पकाकर खिलाये और स्वयं गाली खाये। यह सब कुछ नहीं होने का। मुझे भी पिता जी ने यह सब कुछ सिखलाने की कोशिश की। लेकिन मैं इन विचारों की क़ायल नहीं। स्वयं ऐसी बातें निकालूं कि मनुष्य जीवन में कभी दास न हो, किसी का दास न हो। मैं परिवार और समाज नहीं चाहती। मैं मनुष्य के लिए पूरी स्वतंत्रता चाहती हूँ। कनक, बंधन मनुष्यता का कलंक है।

क०—इतनी सब बातों में तुम्हें पिता जी की याद नहीं आयेगी ?

र०—आयेगी क्यों नहीं, लेकिन मुझे उस याद को भूल जाना होगा। मैं अपनी कमज़ोरी पर विजय पाना चाहती हूँ, कनक। आज उदास थी क्योंकि पिता जी आज ही गये हैं, लेकिन दस पंद्रह दिन बाद यह रजनी दूसरी ही रजनी होगी।

क०—तब तो तुम मुझे भी भूल जाओगी।

र०—तुम्हें कैसे भूल सकती हूँ ?

क०—जैसे पिता जी को भूलने की कोशिश करती हो।

र०—(कुछ अप्रतिभ हो कर) लेकिन भूलने का अर्थ यह नहीं है कि मैं तुम्हारी याद भी न करूँ। हाँ, तुम्हारी याद से मैं रोने के बदले हँसना चाहती हूँ।

क०—अच्छा तो सुनो हम लोग भी कल जा रहे हैं।

र०—अरे, कल ही ?

क०—हाँ, माता जी से पूछ कर तुम से मिलने आई थी। तुम्हारी बातों में उलझ गई। मैंने सोचा कि ऐसी बातें अब कब सुनने को मिलेंगी। सुनती रही; अब देर हो रही है।

र०—अरे, तुम भी जा रही हो !

क०—हाँ, भाई का एग्ज़ामीनेशन पास आ गया है। उन्हें तकलीफ होती होगी खाने पीने की। उन्होंने अपनी ज़िद में अभी तक शादी भी नहीं की। नहीं तो उन्हें ऐसी तकलीफ होती ही क्यों ? कुछ लड़के कैसे आँख मूंद कर शादी करा लेते हैं—मेरे भाई साहब...

र०—शादी नहीं की तो क्या बुरा किया।

क०—उनके विचार कुछ-कुछ तुम्हारे विचारों से मिलते हैं। कहते हैं,मैं विवाह करूंगा ही नहीं और करूंगा तो पहले लड़कीको खूब समझ लूँगा। मैंने कहा—ऐसा करोगे साहब तो लड़की तुम्हें पहले समझेगी। (दोनों हस पड़ती हैं।)

र०—कनक, तुम नहीं जा सकतीं।

क०—लेकिन रजनी, हम लोगों को जाना ही होगा। भाई कहते हैं कि खाना अच्छा और वक्त पर न मिलने से पढाई हो ही नहीं सकती। हम लोगों को तो और जल्दी घर लौट जाना चाहिए था।

र०—(सोचती है) खाने पीने की तकलीफ ! तभी तो मैं कहती हूँ...सारा परिवार परिवार की चिंता में...फिर जीवन में काम क्या करोगी ? परिवार की चिंता परिवार की दासता।

क०—यह दासता नहीं है रजनी ! माता पुत्र को, बहिन भाई को, स्त्री पति को खिलाने में दासी नहीं हो जाती ! यह तो ईश्वर की दी हुई ममता है। यह तो ईश्वर का वरदान है।

र०—(सोचती हुई) पुत्र...भाई...पति (सोचती है।)
(बाहर से आवाज आती है, रजनी और कनक सुनती हैं)

कनक...ओ कनक...अरे सुनो ऐ आदमी...रजनी देवी का टेंट यही है।

मंगल की आवाज़—जी हाँ, सरकार।

बाहर की आवाज़—तो कनक है अंदर ?

मंगल की आवाज़—जी हाँ, सरकार।

बाहर की आवाज़—कहो कि आनन्द बुलाने आये हैं।

क०—(उद्विग्नता से) मेरे भाई की आवाज़ !

र०—तुम्हारे भाई की आवाज़ ! तुम्हारे भाई यहां कैसे ?

क०—वे ही तो हम लोगों को लेने आये हैं। चाचाजी यहां से सीधे आ रहे हैं नैनीताल। उन्होंने भाई साहब को लिखा कि तुम आकर सब को ले जाओ। वही आये हैं।

(मंगल का प्रवेश)

मं०—आनन्द बाबू आये हैं।

क०—बुला लूँ भीतर ?

र०—(अव्यवस्थित होकर) हाँ, हाँ, बुला लो।

क०—उन्हें भेज दो भीतर ! (मंगल जाता है) भाई साहब बहुत अच्छे हैं। शिकार खेलने का शौक। कहते हैं पढ़ना—और शिकार खेलना उनके जीवन के दो पहिए हैं।

(आनंदकिशोर का प्रवेश। २४ वर्ष का नवयुवक है, सुन्दर और सुडौल। मर्सराइज्ड सिल्क का निकर और नीली सर्ज का गर्म कोट पहने हुए हैं। सिर पर एक स्कार्फ। हाथ में ग्लव्स और पैरों में पेशावरी स्लीपर। चलने में निश्चयात्मकता। बोलने में मधुर और दृढ़। शिष्टाचार के नियमों में सधा हुआ। व्यवहार में रुचि और उत्साह। आत्मविश्वास में पूर्ण और प्रसन्न तथा हंसमुख। बोलने में तत्पर और स्पष्ट। उसके हाथ में बंदूक और कंधे से कमर तक लटकती हुई कर्टिजेज़ का बैल्ट।)

आ०—मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

क०—आइए, भाई साहब।

(आनन्द आगे बढ़ आता है। कनक परिचय कराती है।)

क०—मेरे भाई श्री आनंदकिशोर जी, अंग्रेजी, एम० ए० के विद्यार्थी और कुमारी रजनी देवी बी० ए०।

(दोनों परस्पर नमस्कार करते हैं।)

आ०—आपके दर्शन कर प्रसन्नता हुई।

र०—मुझे भी।

आ०—धन्यवाद।

र०—बैठिए ! कुर्सी लीजिए। ओह, मैं मंगल को पुकारती हूँ।

आ०—नहीं, मंगल की क्या ज़रूरत, यह तो मैं ही कर सकता हूँ। (कोने से कुर्सी उठाकर सामने रखता है।) आप बेत वाली कुर्सी पर बैठ जायँ।

र०—नहीं, मैं ठीक हूँ।

आ०—नहीं, आप भी बैठें। हम लोग तो जंगली जानवरों की तरह घूमने फिरने वाले हैं। हमारा क्या।

(रजनी के लिए बेत की बड़ी कुर्सी रख रजनी की कुर्सी अपने लिए रखता है।)

र०—आपके लिए जलपान मँगवाऊँ ?

आ०—नहीं, धन्यवाद। मुझे अभी कुछ नहीं चाहिए।

क०—भाई साहब का जलपान किसी दूसरी चीज से होता है। क्यों भाई साहब, आज कितनों का उद्धार किया ?

आ०—कनक, आज कुछ भी हाथ नहीं आया। आठ मील घूमने पर भी बंदूक कंधे से न उतर सकी। मालूम नहीं, परिंदों ने भी आर्य्य-समाजियों की तरह संगठन कर लिया था। कोई मिला ही नहीं।

रजनी देवी माफ़ कीजिए, मैं शिकार से लौटा ही था कि मालूम हुआ, कनक यहाँ है। मुझे सीधे यहीं चले आना पड़ा। मैं कपड़े भी नहीं बदल सका।

र०—तो हानि क्या है ? शिकारी की पोशाक बुरी नहीं होती।

आ०—धन्यवाद।

क०—लेकिन एक बात तो मैं कहूँगी, भाई साहब। यहाँ साहित्य और समाज की बातें होती हैं। यहाँ शिकारी की पोशाक में आना मना है। यह सरस्वती-मन्दिर है।

आ०—(फर्श पर पड़े हुए फूलों को देखते हुए) ये बिखरे हुए फूल इस बात का समर्थन करते हैं। लेकिन मेरी बेबसी देखते हुए रजनी देवी जी क्षमा करेंगी।

र०—इसमें क्षमा की कौन सी बात ? यह तो सब कनक की शैतानी है। मुझे यों ही बनाती है।

आ०—नहीं, रजनी देवी जी, आज सुबह कनक आपकी बहुत तारीफ कर रही थी। कहती थी कि आपने समाज और साहित्य पर इतना विचार किया है कि आप आसानी से कुछ पुस्तकें लिख कर समाज को ठीक रास्ते पर ला सकती हैं। वह कहती है कि, यों मैं उनसे चाहे हँसी कर लूं लेकिन दिल से तो तारीफ ही करती हूं।

र०—कनक मेरे जीवन के बिलकुल पास आ गई है। मुझ पर उसका प्रेम होना स्वाभाविक है।

आ०—अच्छा, और सुनिए ! आपके विचार जानकर मुझे बहुत खुशी हुई। मैं भी बहुत कुछ इन्हीं विचारों को मानने वाला हूं। समाज ने लोगों को अन्धा कर दिया है। पुरानी परम्पराओं के

सामने मनुष्य की सच्ची भावनाएं उभरती ही नहीं हैं। वह आँख बंद कर पुराने रास्ते पर चल रहा है।

क०—आप दोनों महामहोपाध्याय हैं। मेरी समझ में तो आप लोगों की बातें आती ही नहीं हैं।

आ०—अभी तुम बच्ची हो। इन बातों को क्या समझो? रजनी देवी की भाँति सोचो, समझो, तो कुछ समझ में आये।

क०—मेरे मन में तो सुख दुःख की जो बातें आप से आप आ जाती हैं, वे ही अच्छी लगती हैं।

आ०—ठीक है, लेकिन दुनियाँ अब बहुत आगे बढ़ चुकी है, कनक! मैंने तुम्हें इतनी बार समझाया कि तुम वेल्स पढ़ लो तो तुम ठीक तरह से सोचने लगो लेकिन तुम्हें पढ़ने की फुर्सत ही नहीं। हाँ, मैं एक बात जरूर कहूंगा, रजनी देवी! मेरी कनक को अपनी जिम्मेदारी की सारी बातों पर पूरा अधिकार है और फिर इसके साथ बैठकर कोई उदास रह ही नहीं सकता। इतनी हंसी की बातें करती है कि मालूम होता है—आपके पास एक निर्मल नदी बह रही है...

क०—जिसमें भाई साहब डूबकर भी बच जाते हैं! (स्वर बदल कर) भाई साहब, ये बातें रहने दीजिए। आप किसलिए मेरी खोज में आये थे?

आ०—ओह! मैं भूल ही गया, कनक! तुम्हें माता जी याद कर रही थीं।

क०—तब तो मुझे जाना चाहिए। रजनी, अब मैं जाऊँगी।

र०—कुछ देर और ठहरो ना।

क०—जाने किस काम के लिए माताजी बुला रही हैं।

र०—आओगी?

क०—हाँ, और सुनो, अब शायद हम लोग न मिल सकें। हम लोग सुबह पाँच बजे ही यहाँ से जा रहे हैं। तुमसे शायद मिलना न हो सके। यह लो मेरी भेंट। (माला पहनाती है)

र०—तुम्हारी याद मुझे भूल नहीं सकती, कनक! तुम मुझे याद रक्खोगी?

क०—तुम्हें कैसे भूल सकती हूं, रजनी? तुम्हें भूलना अपने आपको भूलना है।

आ०—अच्छा, तो मैं भी चलूँ। (उठ खड़ा होता है)

र०—आप बैठिए ना, आपको कौन सी जल्दी है? आपकी बातें मुझे बहुत अच्छी लग रही हैं। आप थक भी गये होंगे!

आ०—धन्यवाद। अच्छा कनक, मैं थोड़ी देर बाद आता हूँ। (रजनी से) आपका नौकर है?

र०—हाँ, हाँ मैं उसे कनक के साथ भेज देती हूं। (पुकार कर) मंगल!

मं०—जी, सरकार।

र०—जरा कनक जी के साथ जाओ। इन्हें इनके डेरे तक पहुंचा दो।

मं०—बहुत अच्छा!

क०—रजनी! मेरी ग़लतियाँ भूल जाना और...(कुछ कह नहीं सकती।)

र०—अरे कनक, तुम मेरी प्यारी बहिन हो। तुम कैसी बातें करती हो!

(कनक मौन नमस्कार करके जाती है। रजनी उसे दरवाजे तक जाकर देखती है।)

र०—(लौटते हुए) कनक बहुत अच्छी है। मैं उसके प्रेम में अपने आपको भूल गई थी। मैंने समझा था कि संसार में मेरी एक बहिन भी है।

आ०—यह आपकी उदारता है। नहीं तो इस दुनियाँ में कौन किसे मानता है! सब अपने मतलब से प्रेम करते हैं।

र०—आप कितनी सच्ची बात कहते हैं। मैं भी यही सोचती हूँ लेकिन कनक को प्यार करने में मेरी उदारता नहीं, यह तो कनक का अधिकार है।

आ०—(बैठते हुए) आप इसके बाद मिलती तो रहेंगी कनक से?

र०—मैं कह नहीं सकती।

आ०—क्यों?

र०—मैं अपने जीवन रास्ता ही बदल दिया है।

आ०—ओह, रास्ता बदल लिया है? मैं जान सकता हूँ।

र०—आप मेरे विचारों से बहुत कुछ सहमत हैं इसलिए मैं आपके सामने अपने हृदय की बात रख सकती हूँ?

आ०—हाँ, हाँ, जरूर।

र०—आप जानते हैं, मैंने आपको रोकने का साहस क्यों किया! मैं इस समय बिलकुल अकेली हूँ किन्तु मैं आपसे मिल रही हूँ। शायद समाज की कोई दूसरी लड़की इन परिस्थितियों में आपसे न मिलती।

आ०—मैं आपसे सहमत हूँ।

र०—मैंने सब परिस्थितियों का बंधन तोड़ दिया है। मैं बिल्कुल अकेली हूँ।

आ०—आपके परिवार के लोग?

र०—मेरे परिवार में है ही कौन ? माँ बचपन में ही चल बसी थीं। भाई-बहन कोई है ही नहीं। पिताजी हैं, वे भी आज जालंधर चले गये।

आ०—हाँ, कनक कह रही थी कि आप पिताजी के साथ हैं। फिर पिताजी आपको छोड़कर क्यों चले गये ?

र०—वे जा तो नहीं रहे थे, लेकिन मैंने ही उन्हें चले जाने को कहा। मैं उनका आदर करती हूँ पर उनके विचारों से सहमत नहीं हूँ।

आ०—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि उनके विचार कैसे हैं ?

र०—वह मुझे समाज के बंधन में बाँधना चाहते थे। मैंने इससे इन्कार कर दिया। मुझे समाज का बंधन पसंद नहीं है आनन्द जी। हमारा समाज बहुत गिरा हुआ है। मैं उस समाज से दूर रहना चाहती हूँ।

आ०—इसमें शक नहीं कि समाज के बहुत से बंधन बुरे हैं जो मनुष्य को आगे बढ़ने से रोकते हैं।

र०—और मैं समझती हूँ कि इन बंधनों ने ही हमारे समाज को खराब कर रक्खा है।

आ०—रजनी देवी, आपके इन विचारों को सुनकर तो मुझे ज्ञात होता है कि आपने हमारे समाज की दशा को ठीक पहिचाना है। और आप ही आगे बढ़ेंगी समाज को उठाने के लिए। मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ।

र०—और मैं कहती हूँ, आनंद जी, कि हमारे समाज का गिरना उतना बुरा नहीं है जितना कि गिरकर उसका न उठना है। मनुष्य अभी तक का सीखा हुआ रास्ता क्यों नहीं बदल देता ? वह समाज की चिंता

क्यों करता है ? हवा का भी कोई समाज है ? सूरज की किरण भी किसी बंधन में हैं ? आग भी रस्सी से कसी हुई है ?

आ०—रजनी देवी, यह बात तो सही है लेकिन आप यदि क्षमा करें तो मैं एक बात कहूँ कि आप सब कुछ कर सकती हैं लेकिन समाज को छोड़ना एक बड़ी भूल होगी। आप सब कुछ करें लेकिन समाज को न छोड़ें।

र०—जब आप मनुष्य के स्वतंत्र होने पर मुझसे सहमत हैं तो समाज तो उस स्वतंत्रता का बंधन है !

आ०—सही है, लेकिन मनुष्य समाज का एक प्राणी है। वह राबिन्सन क्रूसो बनकर बहुत दिनों तक नहीं रह सकता। उसे समाज के बीच रहना ज़रूरी हो जाता है। जब वह सभ्यता की चोटी पर चढ़ने की कोशिश कर रहा है तो वह अकेला कैसे रह सकता है ? उसे अपनी बुराइयों से लड़ना है और अपनी कमज़ोरियों को दूर फेंकना है। क्या आप यह नहीं मानतीं कि आप इस कशमकश से भाग नहीं सकतीं ? इस विज्ञान की उन्नति के काल में जब संसार का एक भाग दूसरे भाग से बिजली के हल्के करेंट से भी जुड़ गया है तब आप इस बढ़ते हुए परिवार से भाग कर कहीं नहीं जा सकतीं और अगर आप एक मिनट के लिए चुपचाप बैठीं कि समाज अपने शरीर से आपको नाखून की तरह काटकर फेंक देगा। समाज की हानि नहीं होगी, आप कहीं की नहीं रहेंगी।

र०—और अगर समाज गलत रास्ते पर हो तो ?

आ०—गलत रास्ते पर होते हुए भी समाज की शक्ति कम नहीं है। आप में शक्ति हो तो समाज से लड़ जाइए। एक नया 'सोशल आर्डर' सामने रखिए। लेकिन समाज से मुँह मोड़कर एकांत में चले जाना तो अपनी हार स्वीकार करना है। यह तो एक 'एस्केप'

[escape] है। आप भाग कर छिपना चाहती हैं जिससे समाज की शक्ति का सामना आपको न करना पड़े। मैं तो समझता हूँ आपको पूरी ताकत से इसका सामना करना चाहिए। मेरे सामने भी यही सवाल है। मैं समाज को एक बिगड़ा हुआ जानवर समझता हूँ। अगर मैं इसे पुचकार कर अपने वश में नहीं कर सकूँगा तो इसे ऐसी गोली मार दूँगा कि वह कष्ट से कराहने लगे। मैं इससे अगर दूर भागूँगा तो यह मुझे डरा हुआ मान कर, लपक कर मेरा पीछा करेगा और मुझे बुरी तरह काट लेगा। आप देखती हैं ये निशान ? (कलाई दिखाते हुए) ये एक भालू के पंजे हैं। शिकार करते समय मेरा पैर एक गढ़े में चला गया और मैं पीछे गिरा तो भालू ने समझा कि मैं भाग रहा हूँ। उसने मुझ पर हमला कर ही दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण मैंने अपने सधे हुए निशाने से उसे समाप्त कर दिया।

र०—आप बहुत बहादुर हैं !

आ०—धन्यवाद, लेकिन आप सोच लीजिए कि यह समाज आपके यहाँ चले आने पर आप पर हमला करेगा। आपके सामने न जाने कितनी समस्याएँ खड़ी करेगा। संभव है आप पर कलंक भी लगादे।

र०—मैं इसकी चिंता नहीं करती।

आ०—आपके चिंता न करने से वह चुप तो रहेगा नहीं। समझेगा, वह जो कुछ कह रहा है, सब सही है। तभी तो आप चुप हैं। आप इसे एक तमाचा नहीं मार सकतीं ? जो आदमी समाज को तमाचा मार सकता है, समाज उसके समाने कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगता है। ऐसा है यह जानवर !

र०—लेकिन यह जानवर रोगी है, इसमें कीड़े पड़ रहे हैं। इसका अंग अंग सड़ रहा है। आप जानते हैं, सड़ी हुई चीज को पास रखने से बीमारी फैलती है। मैं ऐसे सड़े हुए समाज को क्यों अपने पास जगह दूँ ? इसमें देश के नौजवान लड़कों को आगे बढ़ने की शक्ति नहीं है। इसमें किसानों की हालत सुधारने की बुद्धि नहीं है। इसमें लड़कियों का विवाह करने की पसंदगी नहीं है। सब कुछ ऐसा हो रहा है जैसे भट्टी की चिमनी से घुट-घुटकर धुआँ निकल रहा हो—जिससे देखने वालों की आंखें भी अंधी हो रही हैं।

आ०—तो इस भट्टी में दस मन कोयला झोंक दीजिए जिसमें आग की लपट निकल पड़े और भट्टी की सारी अधजली चीजें एक बार ही जल जायँ। चुप बैठने से तो धुआँ कलेजे तक भर जायगा और आप सांस भी न ले सकेंगी।

र०—आपकी बात बहुत हद तक ठीक है, आनन्द जी ! लेकिन एक बात है। यह समाज किसी भी नये विचार को अपने भाले की नोंक जैसी ऊँगली उठाकर उसी समय नष्ट कर देता है। क्योंकि यह अपनी ही तरफ देखता है। अपने से बाहर देखने के लिए इसके पास आंखें ही नहीं हैं। फिर यह बूढ़ा समाज अब भी कितना स्वार्थी है ! इसकी रुपयों पैसों वाली नीति मुझे पसंद नहीं। इस जीवन से ऊपर उठना इसका आदर्श ही नहीं है। मामूली सुखों में वह हँसता है और थोड़े से दुःख से ही रोने लगता है।

आ०—यदि सच पूछा जाय तो जीवन का आनन्द संसार से लड़ने-भिड़ने में ही है जिसमें कभी हँसना पड़ता है, कभी रोना पड़ता है। सुख दुःख तो उसे नहीं होते जो मुर्दा है। पड़ा है जमीन

पर। कोई उस पर रो ले; या हँस ले। कोई उसे फूलों की सेज पर सुला दे, या काँटों पर डाल दे। उसमें जीवन नहीं है तभी तो ऐसा है।

र०—आनंद जी! मैं मनुष्य के हृदय को सुख-दुःख से ऊँचा रखना चाहती हूं। लहर की तरह बह जाना मनुष्य को शोभा नहीं देता। उसे होना चाहिए चट्टान की तरह दृढ़ और अटल। मैं चाहती हूं कि मनुष्य स्वतन्त्र हो। वह अपनी इच्छा में किसी का दास न हो। अगर वह दास हो तो उसमें और पालतू जानवरों में अन्तर ही क्या रहा।

आ०—रजनी देवी, मैं भी मानता हूँ कि मनुष्य स्वतन्त्र हो, लेकिन यदि वह अपने सिद्धान्तों का पक्का है तो वह समाज को तोड़ फोड़ कर फिर से बनाये, नये सिद्धांत रचे, नये विचार सोचे। ईश्वर देखे कि उसने मनुष्य को दुनियाँ में कीड़े की तरह नहीं भेजा। भेजा है एक गढ़ने वाले के रूप में। मनुष्य स्वयं ईश्वर बने, रजनी देवी। वह अपनी जिम्मेदारी समझे।

र०—यहाँ हम दोनों सहमत हैं, आनंदजी। अन्तर केवल इसी बात में है कि आप इन विचारों को रखते हुए समाज चाहते हैं और मैं एकांत चाहती हूँ। समाज दुर्बल है, बच्चे की तरह। उससे शासित होना मुझे अच्छा नहीं लगता। और फिर सच पूछिए तो पश्चिम की सभ्यता मुझे पसन्द ही नहीं है। वह सभ्यता भारतीय नहीं हो सकती। जिस तरह गुलाब का फूल कमल नहीं हो सकता और कमल का फूल गुलाब नहीं हो सकता उसी तरह यह पश्चिमी सभ्यता भी भारतीय नहीं हो सकती। इससे हमारे शरीर को सुख भले ही मिले पर आत्मा को सुख कभी नहीं मिल सकता।

आ०—रजनी देवी, आप विदुषी हैं, आपने बहुत ऊँची बात कही है। मैं तो अब आपका आदर और भी अधिक करता हूँ, आपके इन विचारों के लिए।

र०—धन्यवाद। इसीलिए मैं इस सड़ते हुए समाज से हटकर यहाँ चली आई हूँ। अब जीवन के दिन यहां बिता देना चाहती हूं।

आ०—लेकिन रजनी देवी, मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप समाज को चलकर बतलाएं कि आपने इस सभ्यता में बढ़कर भी इसके दोषों को कितनी अच्छी तरहसे पहचाना है। आपकी आवश्यकता हमारे समाज को है। संसार के इतिहास को देखिए, जिन-जिन विचारकों ने सत्य खोज कर निकाले हैं उन्होंने समाज में आकर उसका प्रचार किया है। गौतमबुद्ध, ईसा को देखिए, वे एकांत-सेवी होकर नहीं रहे।

र०—ओह, आप कितने बड़े-बड़े महात्माओं के नाम ले रहे हैं। मेरे विचारों के सिलसिले में इनके नाम जोड़कर इन्हें अपवित्र न कीजिए, आनंद जी।

आ०—आपके विचारों की पवित्रता में किसे विश्वास नहीं होगा ? यह तो विचारों का संसार है। यहाँ विचार से ही आदमी छोटे और बड़े होते हैं।

र०—लेकिन मेरे विचार में अभी शक्ति कहां आई है ?

आ०—यह शक्ति समाज के भीतर जाकर ही आयेगी। समाज की समस्याएँ समाज में रहकर ही हल की जा सकती हैं, समाज से बाहर रहकर नहीं।

र०—लेकिन साधना के लिए एकांत की आवश्यकता है, आनंद जी।

आ०—आप भी ठीक कहती हैं, रजनी देवी! जैसी आप की इच्छा, लेकिन आप मेरे दृष्टिकोण पर भी विचार करें।

र०—नहीं, आप भी ठीक कहते हैं, आनंदजी। आप जैसा विद्वान मुझे अभी तक नहीं मिला। कितना अच्छा होता यदि हम लोग अधिक मिल सकते।

आ०—रजनी देवी, आप मुझे इतना आदर दे रही हैं; इसके लिए धन्यवाद, लेकिन हम लोग कल ही जा रहे हैं।

र०—ओह, यदि मुझे ज्ञात होता कि आप इतने ऊँचे विचार के हैं तो मैं कनक से कह कर उसे और आप लोगों को कुछ दिन और रोकती। सच! आपसे मिलकर प्रसन्नता हो रही है।

आ०—मुझे भी आज बहुत आनन्द हो रहा है आपने मेरे नाम को सार्थक कर दिया। मैं अभी तक बहुत-सी पढ़ी लिखी लड़कियों से मिला, पर आपके समान बुद्धि मैंने किसी में भी नहीं पाई। आपसे मिलकर में समझ रहा हूं कि मेरा यहां आना सफल हुआ।

र०—आप मुझे लज्जित कर रहे हैं। आपके बहुत से विचार मेरे मस्तक में घूम रहे हैं और मैं प्रभावित भी बहुत हुई हूँ। आप पत्रों से तो मुझे अपने विचार लिखते रहेंगे? मेरा पता...

आ०—मुझे मालूम है। अच्छा, आज्ञा दीजिए।

र०—आपको बहुत देर हो गई। मुझें इसके लिए क्षमा कीजिए।

आ०—मुझे क्षमा कीजिए कि आपको अपने कामों से इतनी देर तक रोके रक्खा।

र०—आपको मिलने से बढ़कर और कौन काम होता ?

आ०—(उठता है और कोने से अपनी बंदूक उठाता है ।) आज यह यों ही रही बोझ बन कर—

र०—हिन्दु स्त्री की तरह ?

(दोनों हँस पड़ते हैं)

आ०—कनक झूठ कहती थी कि आपको हँसी नहीं आती ।

र०—कनक बेचारी बहुत अच्छी लड़की है ।

आ०—यह आप जानें । अच्छा, नमस्कार ।

र०—(रजनी नमस्कार के लिए हाथ उठाती है । रोककर) सुनिए, आप एक बात याद रक्खेंगे ?

आ०—क्या ?

र०—कनक से मेरा बहुत बहुत प्यार कहें ।

आ०—(हँसकर) ज़रूर (नमस्कार करके जाता है, रजनी कुछ देर तक मौन खड़ी सोचती है । फिर उस दिशा की ओर देखती है जिधर आनंद गया है । एक क्षण बाद पुकार कर) मंगल !

मं०—जी, सरकार ।

(मंगल आता है)

र०—आनंद बाबू जो अभी यहाँ आये थे, गये ?

मं०—जी हाँ, वह जा रहे हैं । (नेपथ्य में संकेत)

र०—देखो, उन्हें ज़रा बुलाना ।

(जाता है)

मं०—बहुत अच्छा ।

र०—(सोचती हुई) आनंद जी—(फिर कोने के टेबुल की ओर जाती और कुछ काग़ज़ ढूंढ़ने लगती है । कुछ काग़ज़ लेकर आती ही है कि आनंद का प्रवेश ।)

आ०—आपने मुझे बुलाया था ?

र०—क्षमा कीजिये ! मैं चाहती थी कि आप मेरे लिखे हुए कुछ विचार अपने साथ ले जायँ और इन पर अपनी राय लिख कर भेजने की कृपा करें।

आ०—जरूर। आपने मुझे इस योग्य समझा इसके लिए कृतज्ञ हूँ।

र०—नहीं, आप सब तरह से योग्य हैं। (काग़ज़ के पृष्ठ देती है।)

आ०—अब जाऊँ ? नमस्कार।

र०—(कुछ लज्जा से) नमस्कार ! देखिए रात बहुत अँधेरी है।

आ०—शिकारी अँधेरे से नहीं डरता।

(आनंद का प्रस्थान)

र०—कनक और आनंद···कनक और आनंद···कितने अच्छे ! कितने अच्छे ! (कमरे में चारों ओर देखती है। सितार पर दृष्टि पड़ती है। उतारती है। उसके टूटे तारों को फिर से खींचकर खूँटियों से बाँधती है। ठीक होने पर एक तार बजा देती है। फिर सितार को उठा कर जहाँ बंदूक रक्खी थी वहीं रख देती है। उसे देखती है। फिर नौकरानी को पुकारती है।) केसर !

के०—(भीतर से) आई बीबी जी !

(केसर आती है)

र०—केसर ! कनक भी गई और उसके भाई आनंद भी।

के०—हाँ बीबी जी सुबह से ही उनके चलने की बात थी।

र०—केसर, कनक बहुत अच्छी है ना !

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—इन पंद्रह-बीस दिनों में वह बिलकुल ही हिलमिल गई थी। वह तो हम लोगों के आने से पहले ही यहाँ थी।

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—केसर! कनक के भाई को पढ़ना है न? उन्हें परीक्षा में बैठना है।

के०— परीक्षा क्या बीबी जी?

र०—परीक्षा—एँ···एग्ज़ामिनेशन···।

के०—क्या बीबी जी?

र०—कुछ नहीं। अब हम लोग यहाँ अकेले रह गये, सबसे अलग

के०—हाँ, बीबी जी!

र०—तुझे डर तो नहीं लगता?

के०—नहीं, बीबी जी।

र०—हाँ, डरने की क्या बात है? हम लोगों को अकेले रहने की आदत डालनी चाहिए। मंगल कहाँ है?

के०—बाहर है, बीबी जी···बुलाऊँ?

र०—हाँ, बुलाओ।

(केसर जाती है।)

र०—(फूलों की माला जो टेबुल पर पड़ी है उसे हाथ में लेते हुए) कनक, पिताजी···आ—नं (द पूरा नहीं कह पाती कि केसर का मंगल के साथ प्रवेश।)

र०—मंगल!

मं०—जी, सरकार।

र०—मंगल! बाबूजी जाते वक्त कुछ कह गये हैं?

मं०—हाँ, सरकार। कह रहे थे जी कि जैसे ही तबियत उठे, हमें ख़बर देना और बीबीजी का ध्यान रखना। कोई तकलीफ न होने पावे।

र०—अच्छा !

मं०—और जी अपने साथ आपकी तस्वीर भी ले गये हैं। और जाते-जाते उनकी आँखों में आँसू भी थे जी।

र०—(सोचते हुए) पिताजी मेरा फ़ोटो ले गये हैं।...पिता जी...(रुक कर) मंगल !

मं०—जी, सरकार।

र०—तुझे डर तो नहीं लगता ?

मं०—नहीं, सरकार। काहे का डर जी ? कौन बात का डर ?

र०—हाँ, वही तो मैं कहती हूँ। कितना बजा होगा ?

मं०—दस बजते होंगे जी।

र०—अच्छा, तुम अब जाओ। ख़बरदारी से सोना।

मं०—जी, सरकार।

(जाता है।)

र०—केसर, तुम अन्दर के कमरे में सोना खबरदारी से। समझी, मैं यहाँ सोऊँगी।

के०—दूध और फल नहीं खायँगी, बीबी जी ?

र०—नहीं केसर, मुझे कुछ नहीं चाहिए।

के०—कुछ तो खा लीजिए, बीबी जी।

र०—मैं कह चुकी केसर, मैं कुछ नहीं खाऊँगी।

के०—जी, बीबी जी।

र०—जाओ तुम।

के०—अच्छा, बीबी जी।

[जाती है]

र०—[गहरी सांस लेकर] जीवन का पहला अनुभव। अकेली, सब से अलग। मैंने कहा...साधना के लिए एकांत की आवश्यकता है आनन्द बाबू ने कहा—समाज एक बिगड़ा हुआ जानवर है!—अगर मैं इस जानवर को पुचकार कर वश में न कर सकूंगा तो ऐसी गोली मार दूँगा कि वह तकलीफ से कराहने लगे। कितनी शक्ति...कितनी आत्मदृढ़ता।...मैं समाज में चली जाऊँ...? जाऊँ...? नहीं नहीं, मैं यहीं रहूँगी। यहीं रहूँगी। (सोचते हुए पिताजी के तैल-चित्रके पास जाकर) पिता जी, मैं यहीं रहूँगी। मैं दुनियाँ को दिखलाना चाहती हूँ कि सुख कहां और किस में है। लेकिन आपकी आँखों में आँसू... पिताजी! [भावावेग से हट जाती है और अँगीठी के पास जाती है। बैठकर सोचते हुए] आ...नं...द...ओह! कैसा जी हो रहा है! [सोचती है। पुस्तक पढ़ने की कोशिश करती है। व्यर्थ। पुकार कर]—केसर!

के०—[भीतर से] जी, बीबी जी?

[आती है।]

के०—आप सोई नहीं बीबी जी?

र०—नींद नहीं आ रही है, केसर। तू कुछ बातें कर सकती है?

के०—जी, बीबी जी, पर सो जाइए। रात बहुत हो रही है, नहीं तो तबीयत ख़राब हो जायगी।

र०—नहीं केसर, कुछ तबियत ख़राब नहीं होती! [रुक कर] रात बहुत अँधेरी है।

के०—जी बीबी जी।

र०—इस रात में भी लोग आते हैं।

के०—सब सो रहे हैं, बीबी जी आप भी सो जाइए।

र०—अच्छा केसर तू जा। मैं भी सोने की कोशिश करती हूँ।

(केसर जाती है—कुछ क्षण तक रजनी अंगीठी के पास बैठी रहती है। फिर धीरे-धीरे लैंप की बत्ती मंद करती है। लेट जाती है पर एक क्षण बाद पुकार उठती है।) केसर !

के०—जी, बीबी जी (आलस्य-भरा स्वर।)

र०—पीछे का परदा ठीक तरह से बांध दिया है ?

के०—जी, बीबी [मन्द स्वर]

र०—तू सो जा।...

[रात का सन्नाटा हवा जोर से बहती है। एक मिनट तक शांति रहती है फिर रात के अंधेरे में से एक चीत्कार आती है। "दौड़ो दौड़ो, बचाओ"। रजनी चौंक कर उठती है। तेजी से लैंप की बत्ती तेज करती है। और पुकारती है—मङ्गल...मङ्गल]

(केसर और मङ्गल का घबराये हुए प्रवेश)

र०—यह कैसी आवाज़ है ?

म०—कोई आवाज तो नहीं जी !

के०—बीबी जी, आप सोते में नहीं चौंक पड़ीं ? यहां कोई आवाज़ नहीं है।

र०—[अपने ऊपर हंस कर] मैं चौंक उठी ! अच्छा, तुम लोग जाओ, मेरा मन न जाने कैसा हो रहा है ! [दोनों जाते हैं]

[रजनी लैंप की की बत्ती कम करने के लिए जाती है परंतु बिना किये ही लौट आती है। एक क्षण बाद फिर आवाज़ बिलकुल पास आ जाती है] "दौड़ो दौड़ो, बचाओ।" [भाग-दौड़ की आवाज़। फिर चीत्कार !]ओह मेरी शशि...मेरी शशि[फिर चौंक उठती। घबराहट से पुकारती है] मंगल...मंगल

[मङ्गल और केसर दोनों का प्रवेश।]

मं०—सरकार कोई रो रहा है। आप सच कहती थीं जी।

के०—बीबीजी, किसीने बेचारे ग़रीब को मार डाला।

र०—यहीं पास ही है कौन है...ओह...अब क्या होगा ? मंगल देखो, कौन है, उसे बचाओ।

[फिर वही आवाज़ 'मेरी शशि...मेरी शशि।']

र०—मंगल, यहीं अपने डेरे के पास है, देखो कौन है। बत्ती ले जाओ (संदूक से रिवाल्वर निकालती है।) मेरे पास रिवाल्वर है। तुम बाहर जाओ...।

मं०—जी, सरकार !

[जाता है]

र०—केसर !

के०—बीबी जी !

र०—यह क्या हो रहा है ! बाबू जी के जाने के बाद ही यह सब क्या हो रहा है ?

[रिवाल्वर हाथ में लिये बाहर दरवाज़े तक जाती है।]

के०—बीबी जी, आप बाहर न जायं।

र०—[लौट आती है] केसर, यह क्या हो रहा है ?

के०—बीबी जी, किसी का बच्चा.......

बाहर से आवाज़—'चलो बुड्ढे, अरे अंदर चलो—डेरे में' बुड्ढे की कराहती हुई आवाज़....'मुझे कहीं न ले चलो....मैं कहीं न जाऊंगा....मेरी शशि....मेरी....शशि।' फिर मङ्गल की आवाज़ 'चलो भी, फिर देख लेना। सरकार के पास चलो।' मङ्गल का एक बुड्ढे आदमी के साथ प्रवेश। बुड्ढा लँगड़ाता हुआ आता है। उसके घुटने के पास खून के धब्बे। आते ही वह ज़मीन पर गिर पड़ता है। रजनी को देखकर जैसे कराह कर बोल उठता है] ओह, वे लोग ले गये—उस शशि को ले गये!

र०—[पास आकर बैठती हुई] किसे ले गये? एँ—किसे ले गये?

बु०—ले गये—मेरी शशि को ले गये—निर्दयी, पापी, डाकू.... ले गये!

र०—मंगल! तुम बाहर पहरा दो। देखो, कोई आये नहीं।

बु०—अब कौन आयेगा! ओह, भाग गये बदमाश....भाग गये! शशि को ले गये! ओह, कोई ला दो मेरी शशि को....!

र०—ठहरो, ठहरो....बाबा....ठीक बतलाओ कौन शशि?

(बंदूक की आवाज़ आती है।)

बु०—ओह, किसी ने बंदूक....बंदूक....मैं जाऊँगा! जाऊँगा! शशि....शशि....ओह, मुझे बचाओ।

र०—हाँ, हाँ, तुम्हें कोई कुछ नहीं कर सकता। मेरे पास यह रिवाल्वर है....पहिले बताओ—कौन शशि?

बु०—[रिवाल्वर देख कर] हाँ, हाँ, बतलाता हूं........मेरी बेटी....उसे उठा ले गये....बचा लो मेरी शशि को!

र०—शशि को उठा ले गये?

बु०—हाँ, मेरी शशि को...!

र०—कौन उठा ले गया ?

बु०—बदमाश...छीन ले गये ! मेरे घुटने पर लाठी की चोट की और जब मैं गिर पड़ा तो वे लोग उसे उठा ले गये ! मेरी शशि...मेरी शशि...! [उठकर बैठ जाता है] बचा लो, मेरी शशि को...

र०—कहाँ ले गये हैं वे तुम्हारी शशि को ?...

बु०—जाने कहाँ ले गये ! बहुत दिनों से वे लोग मेरे घर आते थे। (दर्द से कराहता है)...ओह ! कहते थे, शशि की मेरे साथ शादी कर दो। मैंने एक दिन फटकार दिया......आज वे लोग गिरोह बना कर आये...(कराहते हुए) मेरी शशि को उठा ले गये...!

र०—(शून्य में देखती हुई) ओह ! स्त्री अपनी रक्षा भी नहीं कर सकती !......(बुड्ढे से) वे लोग किस तरफ गये...?

बु०—अंधेरे में कुछ दिखलाई नहीं दिया ! न जाने कहां ले गये ! मैं भी जाऊंगा, मैं भी जाऊंगा !

र०—अरे, तुम्हें चोट लगी है ! तुम कहाँ जाओगे ?

बु०—जाऊँगा......जाऊँगा, जहाँ मेरी शशि है ! (भागने की चेष्टा करता है।)

र०—अरे, लोग तुम्हें मार डालेंगे...ठहरो, ठहरो...।

बु०—नहीं नहीं...मर जाऊँ तो अच्छा है ! मेरी शशि...मेरी शशि ! मेरी एक ही लड़की शशि...!

र०—(दुहराती हुई) एक ही लड़की शशि...!

बु०—(रजनी की बात पर ध्यान न देते हुए) शशि, बेटा, मैं अभी आता हूँ। बदमाशों को मार डालूँगा.......

(क्रोध और दुःख से लंगड़ाता हुआ जाता है। नेपथ्य में मंगल की आवाज—'वहाँ मत जाओ जी...।' रजनी अवाक् होकर नेपथ्य की ओर देखती रह जाती है। कुछ क्षणों के बाद—लौटती हुई......)—यह हिंदू समाज है, जहां लड़कियाँ इस तरह उठा ली जाती हैं, और वे अपनी रक्षा भी नहीं कर सकतीं......! ओह......(रिवाल्वर हाथ में सम्हालती है।)

के०—नहीं बीबी जी, आप बाहर न जायँ। रात अंधेरी है।

र०—आह, इस बुड्ढे की एक ही लड़की !

के०—बीबी जी...बदमाश लोग हैं।

र०—इन बदमाशों को सज़ा मिलनी चाहिए, नहीं तो ये शह पाते जायंगे।

के०—बीबीजी, जाने कहाँ गये होंगे वे डाकू !

र०—अँधेरी रात.........आज ही अँधेरी रात होनी थी। बेचारा बूढ़ा........बेचारी शशि। उसके भाग्य की ही अँधेरी रात थी।........(अस्थिरता से कमरे में टहलती हैं।) उसके भाग्य की अँधेरी रात........

के०—बीबीजी, सुबह होगी तो देख लीजिएगा।

र०—सुबह क्या पता चलेगा ?

के०—न चले बीबी जी.......पर रात अँधेरी है........आप आराम कीजिए।

र०—क्या आराम करूँ ! नींद हराम हो रही है।

के०—नींद तो सचमुच न आयेगी बीबी जी। यहाँ बदमाश बहुत हैं।

र०—मेरे पास भी उनकी दवा है, केसर (रिवाल्वर दिखलाती है।)

के०—बीबीजी, अब आप आराम कीजिए !

र०—(पुकार कर) मंगल !

मं०—जी, सरकार (आता है)

र०—मंगल, उस बुड्ढे का क्या हुआ ?

मं०—सरकार मेरे रोकने पर भी वह भागता हुआ चला गया और अँधेरे में गुम हो गया जी।

र०—तब तो वह लड़की मिल चुकी। मालूम होता है, यहाँ ऐसी बातें अक्सर होती हैं।

मं०—होती होंगी सरकार।

र०—अच्छा तुम जाओ, आज सोने का काम नहीं है। मेरा जी न जाने कैसा हो रहा है !

मं०—सरकार आप सो जायँ। मैं जागता रहूँगा। पहरा देता रहूँगा जी।

र०—अच्छा, तुम जाओ।

मं०—बहुत अच्छा सरकार।

(जाता है)

र०—आज यह पहली रात बड़ी खराब रही। (कुर्सी पर बैठ जाती है।) केसर उस बुढ्ढे के एक ही लड़की थी...शशि...उसे डाकू ले गए !

के०—हाँ, बीबी जी।

र०—ओह, बेचारा बूढ़ा मर जायगा अब तो।

के०—नहीं मरेगा बीबी जी...आप सो जायँ। तबीयत ख़राब हो जायगी।

र०—केसर, तुम जाओ।

के०—नहीं बीवीजी, जब तक आप न सोएँगी तब तक मैं यहीं रहूँगी। मैं नहीं सोने की।

र०—मैं (जोर देकर) मैं कहती हूँ, तुम जाओ। जरूरत होगी तो बुला लूँगी।

के०—अच्छा, बीबी जी।

(जाती है)

र०—(सोचते हुए) शशि...एक ही लड़की...बूढ़ा पिता...

[सोचती सोचती कुर्सी पर ही सिर रख लेती है। बाहर से आवाज आती है—'मंगल...मंगल...']

मं०—कौन है !

आ०—मैं हूँ आनंद। यहाँ तो कोई नहीं आया ?

र०—(चौंककर) ओह आनन्द जी ! (पुकार कर) मंगल !—(नेपथ्य से) जी, सरकार !

(मंगल आता है)

र०—कौन है ? आनंद जी ?

मं०—जी हाँ सरकार।

र०—उन्हें जल्दी अंदर ले आओ।

मं०—बहुत अच्छा, सरकार।

(जाता है)

र०—(सोचते हुए)आनंद......जी......

मं०—(बाहर) चलिए। आप अंदर चलिए, सरकार।

[बाहर से टार्च की रोशनी धीरे-धीरे आती है। आनन्द टार्च लिए मंगल के साथ आता है। आनन्द सिर्फ कमीज और निकर पहने हुए है। पैरमें जूते भी नहीं है। हाथ में बंदूक है और कंधे

से होती हुई कारतूसों की पेटी। बाल अस्त-व्यस्त ! कमरे में आने पर आनंद टार्च 'ऑफ़' कर लेता है।]

र०—(व्यग्रता से) आनंद जी, यह यहाँ क्या हो रहा है ? मेरी समझ में कुछ नहीं आता !

आ०—आप शांत हों। घबरायें नहीं, रजनी देवी जी, कुछ नहीं होगा। यहाँ तो सब ठीक है ?

र०—हाँ,सब ठीक है।

आ०—आप...?

र०—मैं अच्छी हूँ, बिल्कुल अच्छी हूँ।

आ०—यहाँ तो कोई नहीं आया ?

र०—आया था।

आ०—(आश्चर्य से) आया था ? कौन ? कौन आया था ?

र०—एक बुड्ढा मैंने ही उसे बुलवा लिया था। डाकुओं ने उसे घेर लिया था। उसकी लड़की को वे लोग उठा ले गये। शशि को। वह रो रहा था! उसके घुटनों पर लाठियों की चोट थी !

आ०—घुटनों पर लाठियों की चोट थी ?

र०—हाँ, उसके कपड़े खून से लाल हो रहे थे।

आ०—अच्छा, मैंने अँधेरे में नहीं देखा।

र०—[आश्चर्य से] आपने अँधेरे में नहीं देखा ? आपने भी क्या...[रुक जाती है।]

आ०—जैसे ही मैं अपने डेरे पर पहुँचा और अपने कपड़े बदल रहा था वैसे ही मैंने चिल्लाहट और भाग-दौड़ की आवाज़ सुनी। मैं उसी तरफ़ दौड़ा। मैंने जो टार्च की रोशनी की तो उसमें मैंने देखा कि एक लड़की को दो मज़बूत आदमी उठाये लिये जा

रहे हैं। मैंने उसी समय ललकारा और उन्हें डराने के लिये फ़ायर किया। वे लोग उस लड़की को छोड़कर भागे।

र०—[शीघ्रता से] ओह...शशि बच गई !

आ०—हाँ, मैंने लड़की पर रोशनी फेंकी। उसका मुँह उन लोगों ने कपड़े से कस रक्खा था। मैं उस कपड़े को खोल ही रहा था कि बुड्ढा 'शशि' शशि' कहते हुए वहाँ पहुँच गया—शायद मेरे टार्च की रोशनी देखकर। वह बुड्ढा शायद उस लड़की का बाप था। उसे देखते ही लड़की अपने बाप से लिपट गई। मैं बुड्ढे को धीरज देकर और उसको उसे सौंप कर चला आया, यह देखने के लिए कि यहाँ तो कोई गड़बड़ नहीं है।

र०—ओह, आनन्द जी आप कितने बहादुर हैं ! आप कितने अच्छे हैं ! अगर आप न होते तो बेचारी शशि को तो वे लोग ले ही गये थे।

आ०—ख़ैर, रजनी देवी, मैंने अपना कर्त्तव्य किया। इसमें बहादुरी की कौन सी बात ?

(अपनी बंदूक हाथों पर तोलता है)

र०—नहीं आनन्द जी, आप कितने साहसी और...वीर पुरुष हैं। आनन्द जी, आप बहुत अच्छे हैं।

आ०—ठहरिए, ठहरिए, रजनी देवी, आप लोगों को हम जैसे सिपाहियों की ज़रूरत है। ज़रूरत है ना !

र०—(सिर हिलाती है, धीरे से) हाँ, है (फिर जोर से) देखिए ना, स्त्री इतनी कमज़ोर हो गई है कि वह डाकुओं से अपनी रक्षा भी नहीं कर सकती !

आ०—इसीलिए तो मैं कहता हूँ कि आप समाज में चलकर स्त्रियों को मज़बूत बनायें। आपके लिए यह एकांत नहीं है।

र०—हाँ, मैं भी समझ रही हूँ, आनंद जी !

आ०—और देखिए रजनी देवी जी, इन डाकुओं ने आज उस बुड्ढे के यहां छापा मारा, कल ये लोग हमारे-आपके घर भी आ सकते हैं।

र०—हाँ, डाकुओं को कौन रोक सकता है ?

आ०—आप लोगों की शक्ति ही इन्हें रोक सकती है। जब इन बदमाशों को मालूम हो जायगा कि किसी लड़की को उठा ले जाने से उन्हें अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा तो फिर कभी ऐसा काम करने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ेगी। वे समझेंगे कि स्त्री शक्ति की देवी है, भैरवी है, दुर्गा है।

र०—आप ठीक कहते हैं आनंद जी ! [सोचकर] ओह, मैं कहना ही भूल गई...बैठिए ..बैठिए...।

आ०—नहीं धन्यवाद। रात ज्यादा बीत रही है। आप आराम कीजिए...। इन बदमाशों ने आज आपकी नींद में विघ्न डाल दिया। ये डाकू और बदमाश अपनी बदमाशी से बाज़ नहीं आते। और जब आपको यहां रहना है तो आपको बड़ी खबरदारी से यहां रहना चाहिए। खास इन्तज़ाम के साथ। मैं तो कल यहाँ से चला जाऊँगा। आपने अपने अकेले रहने के लिए भयानक स्थान चुना है। खैर, रजनी देवी जी, अब मुझे आज्ञा दीजिए...।

र०—आप ठहरिए ना...मुझे अकेले कुछ...डर मालूम होने लगा है। आप रुकिए ना...नहीं नहीं...आप नहीं रुक सकते... मैं आपको कैसे रोक सकती हूँ !

आ०—नहीं, उसकी कोई बात नहीं है। मैं रातभर आपका पहरा दे सकता हूँ।

र०—आपको कष्ट होगा, आनंद जी !

आ०—ओह, आप क्या कह रही हैं ! जाने दीजिए ! मैं अब चलूँ । मेरे पैर में पत्थर का एक टुकड़ा रास्ते में चुभ गया । अँधेरा था । ज़रा उसकी देख भाल......

र०—कहाँ ? कहाँ ? देखूँ ? [आनंद के समीप पहुँच जाती है । उसका पैर पकड़ती है ।]

आ०—नहीं आप रहने दीजिए, ठीक हो जायगा ।

र०—नहीं, नहीं, देखूँ ? (आनंद का पैर उठाकर देखती है । पैर की उंगलियों से रक्त निकल रहा है ।)

र०—ओह, मैंने 'तो इसे देखा ही नहीं । मैं अभी पट्टी बाँध देती हूं ।

[चारों ओर देखती है फिर शीघ्रता में टेबलक्लाथ फाड़ कर कोने में रखी हुई टेबल पर ग्लास के पानी में भिगो कर पट्टी बाँधती है]

आ०—ओः, धन्यवाद ! धन्यवाद ! रजनी देवीजी धन्यवाद ! अँधेरे में क्या मालूम होता कि कहाँ पत्थर-कंकड़ है ।

र०—आज आपको बहुत कष्ट उठाना पड़ा ।

आ०—नहीं, इसमें कष्ट क्या ! यह तो प्रत्येक युवक का जीवन होना चाहिए । विपत्ति में लोगों की रक्षा करना...मुसीबतों का सामना करना, ज़िंदगी से लड़ना, समाज को ऊपर उठाना ।

र०—आपने मुझे रास्ता दिखला दिया, आनंद जी ।

आ०—आप स्वयं एक विदुषी हैं । आपमें ज्ञान का भंडार है । अच्छा, अब आज्ञा दीजिए, चलूँ । तो फिर मैं मंगल के साथ पहरा दूँ ? आप अकेली हैं ।

र०—नहीं, आप कष्ट न कीजिए । अब कुछ डर नहीं है आप जाइए ।

आ०—ठीक है, और जब तक मेरी बंदूक यहीं पास में है तब तक किसी की हिम्मत नहीं हो सकती कि वह इस ओर नज़र भी कर सके। और आज मेरी बंदूक की आवाज़ सुनकर तो सब बदमाश भाग ही गये होंगे। दिन में मुझे शिकार नहीं मिला तो ईश्वर ने रात में मेरी बंदूक को जागने का मौका दिया। [हंसकर] अब यह मेरे कंधे पर भारी न होकर हल्की हो गई है, होशियार स्त्री की तरह......

[रजनी कुछ कह नहीं पाती।]

आ०—अच्छा अब जाता हूँ। नमस्ते !

[रजनी मौन नमस्ते करती है।]

आ०—देखिए, किसी बात की जरूरत हो तो मंगल को मेरे पास फौरन भेज दीजिए। मैं अपने डेरे में जागता रहूंगा।

र०—धन्यवाद। [आनंद जाता है। आनंद के जाने पर रजनी कुछ देर तक मौन खड़ी रहती है।] चले गये !...... वीर पुरुष...आनन्द [एक एक शब्द को रुक-रुक कर कहती है।] आ...नं...द [खिड़की के पास पहुंचती है।] कितने सुन्दर ! कितने प्रकाशवान !!

[आकाश की ओर नजर करती है। चंद्रमा का उदय होने जा रहा है। तारे आकाश में छिटके हुए हैं। क्षितिज में चंद्रमा दिखाई पड़ता है। रजनी उसकी ओर देखती है।]

र०—[देखती हुई] कितना सुन्दर...कितना प्रकाशवान... [देखती रहती है। फिर पुकारती है] केसर...!

के०—आई, बीबीजी।

र०—केसर...

के०—आप सोई नहीं, बीबीजी ?

र०—आज सोना भाग्य में नहीं है। केसर...देख, कितना अच्छा चन्द्रमा निकल रहा है!

के०—हाँ, बीबीजी।

र०—अगर यह शाम से ही निकल आता तो शशि पर यह आफ़त क्यों आती? और अंधेरे में पैरों में चोट क्यों लगती? खून क्यों बहता?

के०—कैसी चोट बीबीजी...?

र०—[संभल कर] उस बुड्ढे के पैर में चोट लग गई थी ना? घुटने के पास खून बह रहा था। उसके कपड़े लाल हो रहे थे।

के०—हाँ बीबी जी। उसे तो बहुत चोट लग गई थी।

र०—यही...केसर, तुझे यहाँ बुरा तो नहीं लगता?

के०—बीबीजी...आज रात की यह बात देखकर तो डर मालूम होने लगा है। न जाने आपका जी कितना कड़ा है कि यह सब देखकर भी आप यहां रहने की सोचती हैं। आज आनन्द जी न होते तो ख़ैर नहीं थी।

र०—तू सच कहती है, केसर—

के०—और बीबी जी, मुझे तो उस बूढ़े आदमी को देखकर बाबू जी की याद आ गई। वे भी आपको ऐसा ही प्यार करते हैं! वे तो चले गये जब उन्होंने आपकी सब तरह से यहाँ रहने की तबियत देखी। नहीं तो वे कहीं आपको छोड़ सकते थे यहाँ? अकेले छोड़ सकते थे?

र०—केसर, बाबू जी बहुत अच्छे हैं?

के०—और बीबीजी, आप घर रह कर भी तो पढ़ सकती हैं। यहाँ कौन ज़्यादा पढ़ाई हो जायगी! आनन्द जी रोज रोज तो आयेंगे नहीं।

र०—[चिढ़कर] तू जा। क्या मैं अकेली नहीं रह सकती ?

के०—आप सो जाइए तो मैं चली जाऊँगी !

र०—अच्छा जा, मैं सोती हूँ। [केसर जाती है।]

र०—[चन्द्रमा की ओर फिर देखती है।] मंगल...

मं०—[बाहर से] जी, सरकार।

र०—तू क्या जाग रहा है ?

मं०—जी, सरकार ! आनन्द जी कह गये हैं कि मैं जागता रहूँ। कह रहे थे, कल वह जाने से पहले अपने दो नौकरों को यहाँ और छोड़ जायँगे।

र०—तूने मना नहीं कर दिया ?

मं०—मैं मना कर ही नहीं सका जी, और वे चले गये

र०—चले गये...चले गये...! [मङ्गल से] तुझे बाहर डर तो नहीं लगता ?

मं०—नहीं सरकार, डर काहे का जी। लेकिन आज की बात देख के मुझे डर लगता है जी।

र०—इसमें डर की कौन बात ? अच्छा...सुन...

मं०—बाहर डर की बात तो बहुत है, सरकार...

र०—कुछ नहीं। अच्छा...आनन्द जी चले गए ?

मं०—जी, सरकार...

र०—तो...[सोचने लगती है]

मं०—कहिए, सरकार...?

र०—मंगल, तू उनके डेरे पर जा। देख, चाँद तो निकल आया। अब सब जगह उजेला है।

मं०—अच्छा, सरकार...

र०—और...और...कनक से कहना कि...रजनी ने कहा है कि....कि...[जल्दी से] मैं भी साथ चलूँगी।

मं०—ओहो...ओहो...साथ चलेंगी ? तब तो क्या बात ! मैं अभी दौड़ कर जाता हूं। [जल्दी से भाग जाता है]

र०—केसर...

के०—आई, बीबीजी। [आती है]

र०—केसर, सामान ठीक करो। हम लोग भी कल सुबह चलेंगे।

के०—[खुशी से] वाह बीबीजी ! वाह बीबीजी !

[परदा गिरता है]

गिरती दीवारें ।

नाटक के पात्र

१. राव साहब — १९वीं शताब्दी के एक रूढ़िधारी कुल का स्वामी—कुलपति।

२. विजय मोहन — राव साहब का बड़ा लड़का जो अपने वंश की मर्यादा पर चलने की चेष्टा करता है।

३. प्रद्युम्न कुमार — राव साहब का छोटा लड़काजो नयी परिस्थितियों में रहकर बड़ा हुआ है।

४. मुंशी — राव साहब का पुराना मुंशी।

५. रामनारायण — राव साहब का नौकर।

६. कान्ता — प्रद्युम्नकुमार की लड़की—राव साहब की पोती।

७. मिस साहब — कान्ता की ईसाई अध्यापिका।

रामनारायण की लड़की, अन्य नौकर आदि

परिचय

श्री पं० उदयशंकर जी भट्ट का घर जिला बुलंदशहर में है। २५-३० वर्ष से आप लाहौर में ही रहते हैं और सनातनधर्म कालेज में अध्यापन कार्य करने के साथ साथ हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। आप हिन्दी, संस्कृत अंग्रेजी और गुजराती के अच्छे विद्वान हैं। आप उच्च कोटि के दार्शनिक कवि, नाटककार और उपन्यास लेखक हैं। आपके नाटकों में 'दाहर और सिंधपतन' 'अम्बा' 'सगर-विजय' 'कमला' 'अंतहीन अंत' 'तीन नाटक' और 'एकांकी नाटक' प्रसिद्ध हैं। भट्टजी के अधिकांश नाटक दुःखान्त होते हैं। प्रस्तुत एकांकी इसी ढंग का है। आप इस सिद्धांत में अटल विश्वास रखते हैं कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को ढालने में परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ है।

'गिरती दीवारें' की कथा-वस्तु सादा और रोचक है। इसमें यह दिखाया है कि किस तरह रूढ़ियों का बदलना और उनकी जगह नये विचारों और नये रिवाजों का आना अनिवार्य है; परन्तु बड़े-बूढ़े इन परिवर्तनों को देखकर सहन नहीं कर सकते। उनके लिए परम्परा जीवन है और परिवर्तन मृत्यु। नाटक के प्रधान पात्र रूढ़िधारी राव साहब भी १६वीं शताब्दी में रहने की चेष्टा करते हैं। उनके दीवानखाना में जूता लेकर घुसना, स्त्रियों का आना, ऊँचे बोलना मना है। इनके वंशजों में पैदल चलने का रिवाज नहीं—बंद पालकी में जाना पड़ता है। ये लोग कुर्सी पर बैठना, अहिंदू से हाथ मिलाना भी बुरा समझते हैं। इनका खान-पान, इनके कपड़े-वस्त्र, एक विशिष्ट ढंग के हैं। परन्तु परिस्थितियां बदल गयी हैं और ये प्रतिबंध एक एक करके टूटने लगते हैं। राव साहब अपनी आंखों के सामने वंश की मर्यादा का अंग-भंग होते देखते हैं। उनकी परम्परा के भवन की दीवारें नये वातावरण में नहीं ठहर सकतीं। वे गिरती हैं और अपने साथ राव साहब की जान भी ले लेती हैं।

[एक पुराने रईस का कमरा—देसी ढंग से सजा हुआ। जमीन पर एक तरफ़ मोटा गद्दा बिछा है जो आधे से अधिक कमरे को घेरे हुए है। दरवाज़े के पास किनारे २ बैंत की बनी हुई कुर्सियां रखी हुई हैं। गद्दे पर गाव-तकियों की कतार ठीक ढंग से रखी है। एक तरफ़ कोने में एक मेज पर तांबे का लोटा रखा है।

दीवार पर विभिन्न प्रकार के चित्र लगे हैं। एक ओर उस वंश के पूर्वजों के चित्र लगे हैं। प्रायः प्रत्येक चित्रमें उस हिस्सेके पूर्वज चोग़ा पहिने हुए हैं। कान को ढके हुए एक विशेष नोकवाला साफ़ा है। ऐसी नोक जनसाधारण अपनी पगड़ी में नहीं रखते। यही इस परिवार की विशेषता—है चोग़ा और पगड़ी।

कमरे के वातावरण को देख कर ज्ञात होता है कि पुरानी रूढ़ियों को पालना इस कुल का परम लक्ष्य है। कोई बात जो अब तक नहीं हुई; इस घर में नहीं हो सकती। जिस ढंग से बात करने का नियम है उसी ढंग से बात करना सिखाया जाता है। प्रत्येक लड़के को यही सीखना होता है कि इस कुल की परम्परा क्या है। परम्परा के विरुद्ध कुछ नहीं होता।

कुलपति अस्सी-पचासी वर्ष के व्यक्ति हैं। उनका शरीर शिथिल है। अपने पूर्वजों की पोशाक में कालीन पर ही बैठते हैं। उनकी आज्ञा है कि कोई भी व्यक्ति कमरे में ज़ोर से न बोले; बिल्कुल धीरे; अदब-क़ायदे से आए। जूते दरवाज़ेके पास उतारे। यदि जूते न उतारने हों तो दीवार के किनारे २ लगी हुई कुर्सियों पर बैठे।

यही उस कुल तथा कमरे की रक्षा का उपाय है। उस कमरे में स्त्रियां नहीं आ सकतीं। छोटी-छोटी लड़कियां भी नहीं। उनके लिए उस कमरे के पीछे बड़े कमरे में उठने-बैठने का स्थान निश्चित है।

मुख्य कमरे के साथ एक छोटा कमरा है जिसमें कुलपति का पुराना मुंशी बैठा रहता है। उसके सामने रजिस्टर-वहियां एक डैस्क पर फैली हैं। वह छोटा कमरा उस कमरे से दिखाई देता है। केवल मान-रक्षा के लिए एक पर्दा डाल दिया गया है। आवश्यकता होने पर पर्दा हटा दिया जाता है। पर ऐसा बहुत कम होता है, प्रायः उस समय जब बड़े आदमी घर पर नहीं रहते। एक बात और ? उस घर का कोई भी व्यक्ति पैदल नहीं चल सकता। उसे गाड़ी पर जाना होगा।

कहा जाता है, उनके पूर्वज किसी राजा के यहां एक बड़े पद पर नियुक्त थे। महाराजा उनको बहुत मानते थे। यहां तक कि महलों और अपने घर के सिवा वे कभी पैदल नहीं चले। सदा बन्दगाड़ी में चलते। नगर के बहुत से व्यक्तियों ने उनको नहीं देखा था।

तब से कुल का बड़ा लड़का जो घर का मालिक होता था, इस नियम का पालन करता था। फिर भी पैदल चलना, बिना चोगे पगड़ी के दीवानखाने में आना असम्भव समझा जाता था। वृद्ध का एक लड़का था जो उसी नियम का पालन करता था। गृहस्वामी प्रायः कभी-कभी उस कमरे में आता था।

कमरे में उत्तर की तरफ क्रमशः तीन आसन (कालीन) गाव-तकियों के साथ बिछे हैं। उन पर क्रमशः वंश के पूर्वज बैठा करते थे। प्रत्येक आसन पर उन पूर्वजों के चोगे, पगड़ी और खड़ाऊँ रखी हैं। खड़ाऊं पर फूल चढ़े हैं। चौथा आसन ठीक इसी प्रकार का गृहपति का है। उसके साथ ही लड़के का आसन है। गृहपति के आसन पर तीन गाव-तकिए और लड़के के आसन पर एक नक्कासीदार डेस्क है।

उस कमरे में घुसने का कायदा यह है कि सिवा गृहपति के जो भी व्यक्ति उस कमरे में आये उसे तीन बार झुककर सलाम

करना पड़ता है। गृहपति के आसन के पास एक गोल कटोरा और एक छोटा सा डंडा रखा है। स्वामी जब किसी को बुलाना चाहते हैं तो कटोरे को डंडे से बजाते हैं।

इस समय कमरा खाली है। एक नौकर है जो कमरे की धूल झाड़ रहा है। वह प्रत्येक आसन के पास जाकर तीन बार झुककर सलाम करता है, फिर सब चीजों को साफ करता है। साफ करते हुए कभी-कभी सीटी बजाता है, बोलता नहीं। एकाएक नौकर की लड़की रोती हुई दौड़ी आती है।

लड़की—(जोर से) काका, काका ओह काका !

नौकर—(डर से मुँह पर उँगली रखकर) चुप !

लड़की—काका, भैया चौंतरे से गिर पड़ा, काका। उसके खून निकल आया। अम्मा बुला रही हैं। चलो जल्दी।

नौकर—(बहुत धीरे से) तू जा; मैं आया। रांड कहाँ की ! चिल्ला रही है। जा... ।

लड़की—चलो न काका; चलो।

नौकर—जा... । (उसी स्वर में। पास जाकर कमरे से बाहर कर देता है। लड़की रोती २ चली जाती है)

(सहसा पीछे से वृद्ध राव साहब का प्रवेश)

राव साहब— धीरे से) रामनारायण ! यह क्या ? अरे तुमने यह क्या किया ? तुम्हें मालूम है आजतक इस कमरे में कोई जोर से नहीं बोला। बड़ा ग़ज़ब हो गया रे। (स्वयं कांपने सा लगता है) देखते हो हमारे पूर्वज इसमें रहते हैं। (इतना कहने के साथ प्रत्येक आसन को झुक-झुक कर सलाम करते हैं। रामनारायण एकदम स्वामी का आना जान कर कांपने लगता है)

राव०—यह तो बुरा हुआ ! बहुत बुरा हुआ ! (बैठ कर डंडे से कटोरा बजाते हैं) ठहरो। तुम इस कमरे से नहीं जा सकते। ठहरो।

ठहरो। (घंटी की आवाज से वृद्ध मुंशी आजाता है। आने पर वह भी तीन बार झुक कर सलाम करता है) मुंशी, सुनो मुंशी, रामनारायण ने मेरे वंश की प्रथा को तोड़ा है। सुना मुंशी. इसने परम्परा से चली आई प्रथाको तोड़ डाला है। इस कमरेमें मेरे पूर्वज निवास करते हैं। (इसके साथ प्रत्येक आसनकी ओर हाथ उठाता है मानो उन्हें सलाम कर रहा हो) मैंने कोई भी व्यक्ति इस कमरे में जोर से बोलते नहीं देखा—अपने समय में ही नहीं पिताजी के समय में भी।

मुंशी—मैं स्वयं पचास वर्ष से रह रहा हूँ, श्रीमान्! मैंने आजतक ऐसा अनर्थ नहीं देखा। यह तो बहुत बुरी बात है।

राव०—न जाने क्या होने वाला है?

मुंशी—मुझे रात से ही भयङ्कर स्वप्न आ रहे हैं। प्रातःकाल यह हो गया।

नौकर—महाराज, क्षमा चाहता हूँ।

राव०—कभी ऐसा नहीं हुआ। हम लोग सदा से मर्यादा का पालन करते आये हैं। इसको मेरे सामने से हटा दो, मुंशी! ओः वह देखो, ओह वह देखो। पिता, पितामह प्रपितामह के चोगे क्रोध से हिल रहे हैं। देखते हो ना? अरे (ऊपर देखकर) सब पूर्वजों के चित्र मेरी ओर क्रोध से देख रहे हैं। न जाने क्या होने वाला है?

[मुंशी नौकर को हाथ से पकड़ कर बाहर निकाल देता है]

मुंशी—अनर्थ यहीं तक नहीं हुआ। रामनारायण की लड़की आ गई।

राव०—(डर के मारे आंखें बन्द कर लेता है। काँपता हुआ) लड़की आ गई? क्या वह लड़की थी मुंशी! (बैठ कर) अब क्या

होगा ? ग़ज़ब हो गया। अनर्थ हो गया। (चित्रों की ओर झपकती हुई आंखों से देखता हुआ) मर्यादा भङ्ग हो गई। (डर के मारे दूसरी बार कटोरा बजा देता है) हैं, यह क्या हुआ। यह दूसरी बार कटोरा क्यों बज उठा? ऐसा कभी नहीं हुआ। यह अनहोनी बात है, मुंशी !

मुंशी—जी ! अनहोनी बात है। न जाने क्या होनेवाला है। ऐसा तो इस घर में कभी नहीं हुआ।

राव—हाँ, रामनारायण के दंड की व्यवस्था करनी होगी। भयंकर बातें हो रही हैं इस घर में। देखो, विजयमोहन कहां है ? रात में एक भयंकर स्वप्न देखा था, मुंशी ! (एक दम गाव-तकिए का सहारा लेकर आंखें बन्द कर लेता है। चेहरा पीला पड़ जाता है। मुंशी पंखा करने लगता है। रामनारायण कटोरे की आवाज़ सुनकर लौट आता है) अरे यह फिर आगया ? फिर आगया यह ! इसने मेरे सारे स्वप्न भंग कर दिए। जा दुष्ट, तूने मेरे जीवन का अन्तिम सुख छीन लिया। दूर हो। (राव साहब के लड़के का अस्तव्यस्त अवस्था में प्रवेश) अरे ! यह क्या ? चोग़ा फट कैसे गया, ? ग़ज़ब हो गया। न जाने क्या होनेवाला है ?

विजयमोहन—[खेद के साथ तीन बार पूर्वजों की गद्दी को सलाम करके] न जाने क्या होनेवाला है, पिता जी ! आज मुझे जीवन में पहली बार पैदल चलना पड़ा। सब लोग देख रहे थे।

मुंशी—वंश की प्रतिष्ठा सब नष्ट हो गई, महाराज ! चोग़ा फट गया।

राव—न जाने क्या होनेवाला है ! [तकिए पर से सिर ढुलक जाता है। सब लोग सम्हालने दौड़ते हैं]

विजय—न जाने क्या होनेवाला है, मुंशी ! रास्ते में आते-आते मेरी गाड़ी एक दूसरी गाड़ी से टकरा गई ! लोगों ने मुझे देख लिया। ओः मेरा चोग़ा फट गया ! बहुत ही अशुभ चिन्ह है, मुंशी !

मुंशी—हाँ, बाबू ! न जाने क्या होनेवाला है। आज सबेरे रामनारायण की लड़की कमरे में आई और चिल्लाने लगी।

विजय०—हैं [आश्चर्य से] हैं ! ऐसा क्यों ?

मुंशी—हाँ, बाबू ! लक्षण अच्छे नहीं हैं। इस घर ने सदा मर्यादा का पालन किया है। आज तक किसी ने भी इन पूर्वजों के साथ जोर से बातें नहीं कीं।

विजय—मैं बहुत दिनों से देख रहा हूँ, इस घर की प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नज़र आ रहे हैं।

राव०—(चैतन्य होकर) क्या कहा ? प्रतिष्ठा के दिन समाप्त होते नज़र आ रहे हैं ! मेरे रहते ही क्या, विजयमोहन ! नहीं, ऐसा न कहो। (चित्रों को प्रणाम करते हुए) क्रोध न कीजिए। मैंने भरसक इस घर की मर्यादा की रक्षा की है। तुम्हारी आज्ञा का पालन किया है। देखो विजय, रामनारायण बिना खाये-पिये मेरे इन पूर्वजों के सामने हाथ जोड़े मौन खड़ा रहेगा। समझे ! यही हमारे वंश का दंड है उनके लिए, जो हमारे नियम भंग करते हैं। (चुप रहता है) मैंने सुना है, देखा नहीं, कि दादा जी के समय में कोई सम्बन्धी इस कमरे में घुसकर जोर से चिल्लाया तो उन्होंने उसे सात दिन तक निराहार रहकर खड़े रहने का आदेश दिया था। जब वह मूर्छित हो गया तो उसे खाट से बाँधकर खाट खड़ी कर दी गई थी। वंश-मर्यादा को तोड़ना साधारण बात नहीं, विजय !

विजय—यथार्थ है, पिता जी ।

मुंशी—मैं पचास वर्ष से इस घर का अन्न खा रहा हूँ । मैंने कभी नहीं देखा किसी ने वंश-मर्यादा में बट्टा लगाया हो, वंश की मर्यादा में धक्का लगाकर उसे पीछे धकेला हो । आखिर यह महाराज के कोषाध्यक्ष का कुल है । मुझे याद है पुराने स्वामी कभी भी बाहर नहीं निकले ।

एक बार गांव के बाहर लोगों ने उनके दर्शनों की इच्छा प्रकट की, तब वे पालकी में बैठकर एक बार गांव गए—केवल एक बार । वहां भी गांव के लोगों ने उनके दर्शन पर्दे से किए । उस समय गांव के लोगों को ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे भगवान उतर आए हों । बाहर वे कभी न निकले । अंग्रेजों के दरबार में भी वे जाते रहे । सरकार बहादुर ने उनके मिलने का खास प्रबन्ध किया था । उनसे कह दिया था कि आपके आने की कोई आवश्यकता नहीं है । सरकार आप पर बहुत खुश है ।

राव०—तुम ठीक कहते हो, मुंशी । यही बात है । तब से इसी तरह मैं भी बाहर आता-जाता रहा हूँ । तीस वर्ष पूर्व जब तीर्थयात्रा को गया तब भी पालकी ही में यात्रा की । एक बार चलते चलते हमारे पालकीवाले कीचड़ में फँस गए । उस समय गांववालों ने ही मेरी सहायता की; मैं पालकी से नहीं उतरा । मेरा विश्वास है जब तक हम अपनी वंश-मर्यादा का पालन करते रहेंगे तब तक हमारा नाश नहीं होगा । मेरे प्रपितामह ने एक बार स्पष्ट कहा था, हमारा वंश बहुत ऊँचा है—हम लोग साधारण मनुष्यों-से नहीं हैं । हमारे ऊपर विशेष कृपा करके ईश्वर ने हमारे वंश का निर्माण किया है । यही कारण है कि इस वंश को आज तक कभी पतन का दुख नहीं देखना पड़ा ।

विजय—यथार्थ है। मेरी ही समस्या को लो। मैंने आज तक उन्हीं नियमों का पालन किया है। आज न जाने कहाँ से यह सब हो गया !

राव०—मुझे डर है कि प्रद्युम्नकुमार हमारे इस वंश की रक्षा कर सकेगा या नहीं ? वह अँग्रेजी पढ़कर तहसीलदार हो गया है। मेरे मना करने पर भी वह राजकुमार कालेज में पढ़ने गया था। हमारे घर में कोई भी घर से बाहर पढ़ने नहीं गया। सदा घर पर ही अध्यापक रख कर पढ़ाया जाता रहा है। केवल इसीलिए कि मर्यादा भंग न हो। बाहर का वातावरण तो विष से भरा होता है ना, मुंशी ?

मुंशी—जी।

राव०—न जाने कोई क्या कह दे ? क्या परिस्थिति हो ? हम लोग साधारण मनुष्य नहीं हैं। इसलिए अख़बार नहीं मंगाते। मैंने कोई समाचार-पत्र नहीं पढ़ा।

विजय—मैंने भूल से एक बार समाचार-पत्र पढ़ा था। तभी मैंने देखा कि समाचार-पत्रों में बहुत सी बातें झूठी होती हैं। उदाहरण के लिए यह कि अमुक देश में अकाल पड़ गया; हज़ारों लोग भूखों मर गए। भला यह कोई बात है ! उस जगह का अनाज कहां गया ? 'देश में हज़ारों की संख्या में बाल-विधवाएं हैं—बाल-विधवाएं !' मैंने नहीं सुना हमारे नगर में दो-चार भी बाल-विधवाएं हों। इन समाचारों से लाभ क्या है, मैं पूछता हूँ ? एक बार किसी ने लिखा कि आदमी हवाई जहाज से उड़ने लगा है। भला यह भी विश्वास करने की बात है ? कभी ऐसा भी हो सकता है कि आदमी उड़ने लगे ! आखिर कौनसी चीज़ है जिस पर बैठ कर आदमी उड़ेगा।

मुंशी०—गप्प है—बिल्कुल गप्प है। न जाने क्यों सरकार ने इस पर रोक-थाम न लगाई !

राव०—भई कलियुग है। कलियुग में जो न सुनने में आए सो थोड़ा है। शिव ! शिव ! न जाने क्या होने वाला है ? सुना है रेल नाम की कोई चीज बनी है जो जल्दी ही एक जगह से दूसरी जगह पहुँचा देती है ? मैं कहता हूँ कि हमें इधर-उधर जाने की आवश्यकता क्या है ? हमारे घर में क्या नहीं है ?

विजय०—(पिता से] एक बार एक अंग्रेज हमारे घर में आ गया जिन दिनों आप तीर्थयात्रा को गए थे। तो मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया। क्या करूं ? कहां बिठाऊं ? मैंने बाहर दालान में तख्त बिछवाए। गद्दी, कालीन, तकिये ठीक तरह जमा दिये वहां मैं उससे मिला। उसके बाद सारा घर गोबर से पुतवाया, सब कपड़े धुलवाए। गङ्गाजल छिड़कवाया। तब कहीं जाकर घर पवित्र हुआ। घर की मर्यादा है !

मुंशी—मैं भी तो था !

राव०—मुझे गर्व है—तुम जैसे पुत्र मेरे घर हुए। फिर भी इस कमरे में तो ऐसे अनजाने को आने का अधिकार ही नहीं है। अच्छा हुआ उसने हमारे पूर्वजों के चित्र देखने का आग्रह नहीं किया, नहीं तो बड़ी कठिनाई आती।

विजय—उसने कहा था कि हमें अपना घर दिखाओ। मैंने कहा—पिता जी नहीं हैं; मकान की चाबी उनके ही पास है। वे तीर्थ-यात्रा को गए हैं। मैं स्वयं उससे दूर एक ओर तख्त पर बैठा था। जब उसने मिलाने को हाथ उठाया तो मैंने दूर से ही हाथ जोड़ दिए; उसके पास नहीं गया। फिर भी मैंने सब कपड़ों के साथ स्ना

किया। क्या करता? अंग्रेज नाराज़ हो जाता तो न जाने क्या होता?

राव०—अब न जाने क्या होने वाला है? हम लोगों को अपनी मर्यादा नहीं छोड़नी चाहिए, विजय!

[एक नौकर का प्रवेश]

नौकर—(तीन बार सब को सलाम करके) श्रीमान्, छोटे राजा पधार रहे हैं।

राव०—प्रद्युम्न आया है क्या? अच्छा!

विजय—आज ठीक तीन वर्ष बाद लौट रहा है। न जाने कैसा होगा?

मुंशी—अब अंग्रेजों से बात करने में हमें सुविधा होगी।

[प्रद्युम्नकुमार का प्रवेश, चालीस वर्ष की वयस; कोट-पतलून पहने; सिर पर टोप। उसे देखते ही जैसे लोग उसे पहिचानते नहीं हैं। आश्चर्य से अभिभूत केवल पिता को ही प्रणाम करता है और किसी को नहीं]

प्रद्युम्नकुमार—(केवल हाथ जोड़ता हुआ जूते उतार कर पिता के पास आ जाता है। चोगा और पगड़ी उसके सिर पर नहीं है। यह उन लोगों के लिए आश्चर्य की बात है) मेरा तबादला दूसरी जगह हो रहा था, मैंने सोचा, चलूँ, आपसे मिल लूँ। कहिए आपका स्वास्थ्य कैसा है? और भैया तुम? तुम्हारे भी बाल सफ़ेद हो रहे हैं। आजकल बड़ा काम रहता है। या तो भाग-दौड़ या फिर दफ़्तर का ढेरों काम। सिर उठाने को भी समय नहीं मिलता। आप बड़ी हैरानी से मेरी ओर देख रहे हैं? ओः समझा, शायद इस लिए कि मैंने टोप नहीं उतारा? ठीक क़ायदा यह है कि जब अपने से बड़े के सामने जायँ तो टोप उतार लेना चाहिए। बात यह है कि जहाँ मैं रहता हूँ वहाँ मुझ से बड़ा कोई नहीं है। इसलिए जब कोई बड़ा

अफ़सर आता है तो मुझे टोप उतार देना होता है। (टोप उतार कर) क्यों, आप कोई बोल नहीं रहे हैं? क्या बात है? समझा, शायद इसलिए कि मैंने टोप पहन लिया है! अंग्रेज़ बन गया हूँ! क्या किया जाय पिता जी, अंग्रेज़ों के साथ रहकर ऐसा करना पड़ता है। न करूँ तो गांव वालों पर रौब न जमा पाऊँ। रही चोगे की बात, वह तो वहाँ पहला तमाशा ही होता। मैं मजबूर हूँ।

[राव साहब सिर हिलाते हैं जैसे अभी ढुलक कर गिर पड़ेंगे और मुंशी आँखें फाड़ कर देखता है]

विजय—तुमने वंश की मर्यादा नष्ट कर दी प्रद्युम्न! तुम पिता के सामने इस वेश में आए? आने से पहले तुम्हें दो बार सोच लेना चाहिए था। अच्छा होता यदि तुम न आते!

प्रद्युम्न—(आश्चर्य से) सुनो भैया मैं क्यों न आता? यह मेरा घर है—मेरी जायदाद है। मैं क्यों न आता? मैं रंडियों की सी पेशवाक़ पहन कर कचहरी नहीं कर सकता। सिर पर व्यर्थ का गट्ठर नहीं रख सकता। समय बदल गया है हमको भी बदलना चाहिए। क्या रखा है इन पुरानी बातों में।

विजय—तो तुम्हारे विचार में पुरानी बातें बुरी होती हैं? तुम्हारा शरीर भी तो चालीस साल पुराना हो गया है उसे क्यों नहीं छोड़ देते?

(पिता और मुंशी इस तर्क पर प्रसन्न होते हैं)

प्रद्युम्न—यह भी विचित्र तर्क है। क्या शरीर छोड़ना, ना छोड़ना मेरे हाथ में है? उस ईश्वर ने शरीर दिया है जब चाहेगा तब ले लेगा। जब उसे लेना होता है तो वह यह थोड़े ही देखता है कि शरीर नया है या पुराना।

(दोनों उदास हो जाते हैं)

विजय—तब यही कैसे कह सकते हो कि पुरानी बातें बुरी हैं। हम भी तो, पिता जी भी तो मनुष्य हैं, हमें यह बातें बुरी नहीं दिखाई देतीं।

प्रद्युम्न—आप लोग घर में रहते हैं। मुझे बाहर आना जाना होता है, लोगों से मिलना-जुलना पड़ता है। मुझे समय के साथ चलना होगा। मैं पैदल भी चलता हूँ, गाड़ी में भी चलता हूँ।

राव०—(आश्चर्य से) पैदल भी! न जाने क्या होने वाला है इस घर का? (तकिये पर मुँह लटका कर गिर पड़ता है)

विजय—(एकदम दौड़कर पिता को सम्हालता है, मुंशी पंखा करता है) बड़ा अनर्थ हो रहा है। देखो, देखो, प्रद्युम्न, पूर्वजों के चित्र क्रोध से हमको देख रहे हैं। उनके कपड़े क्रोध से हिल रहे हैं। कमरे का वातावरण गुमसुम हो गया है। हमारी वाणी सूखी जा रही है। क्या तुम कुछ भी नहीं देखते? अच्छा, तुम इस घर से चले जाओ।

(राव साहब होश में आते हैं। प्रद्युम्न उनकी तरफ देखता है—देखता ही रहता है। फिर एक बार चित्रों की ओर देखता है। इतने में एक लड़की—प्रद्युम्नकुमार की—जो लगभग १० वर्ष की है, कमरे में दौड़ती हुई आ जाती है। कन्या एक फ्रॉक पहिने है, अंग्रेजी ढंग के बाल कटे हैं। टांगें खाली, जूते पहिने चली आती है। उसके साथ उसकी ईसाई अध्यापिका भी घुसती है। दोनों जूते पहिने भीतर आ जाती हैं और लड़की उसे सब चित्र आदि दिखाती है)

कान्ता—देखती हो मिस साहब, ये मेरे बाबा हैं। बाबा, ओ बाबा!

कान्ता—(बाबा के पास दौड़ती हुई रुक कर) ये हम लोगों के बाप-दादों की तसवीरें हैं। अरे बाबू जी, आप भी बैठे हैं! गुमसुम, चुपचाप!

मिस—(आश्चर्य से देखकर) बेबी, स्ट्रेञ्ज ड्रेस! हाउ आक्वर्ड इट लुक्स!

[सब लोग चित्रलिखे से रह जाते हैं मानों उन्हें काठ मार गया हो। जैसे ही वे कमरे में आने लगी थीं नौकर उन्हें रोकने आया था। किन्तु साहस न होने के कारण बाहर दरवाजे पर खड़ा हो गया। वहां खड़ा रहता है]

विजय—कान्ता, बाहर जाओ! जाओ बाहर!

मुंशी—मिस साहब, बाहर जाइये!

रा०—न जाने क्या होने वाला है? आज स्वप्न सत्य हो रहा है। मैं अब······और···और (सिर लुढ़क जाता है) और न···हीं··· (डर से दोनों स्त्रियां बाहर चली जाती हैं। सब राव साहब को सम्हालते हैं। प्रद्युम्न भी पिता के पास आता है) तुम मुझे मत छुओ, प्रद्युम्न। हाथ मत लगाओ। मुझे इसी कमरे में मरना होगा। बाहर मत ले जाना। मेरे पिता, पितामह, प्रपितामह इसी कमरे में मरे थे—इन्हीं आसनों पर। यही वंश की मर्यादा है। [हाथ चित्रों को प्रणाम करने के लिए उठते हैं] नहीं अब और नहीं! सब समाप्त हो चुका। वं···श···की···म···र्या···दा···

[मर जाता है। सब चित्राभिभूत से खड़े रहते हैं।]

देश-भक्त सम्राट् पुरु

नाटक के पात्र

१. पुरु	मद्र-देश के सम्राट्, नाटक के नायक।
२. आम्भी	तक्षशिला का राजा।
३. सिकंदर	यूनान के सम्राट्, जिन्होंने सन् ३२६ ई० पूर्व भारतवर्ष पर आक्रमण किया था।
४. सेल्यूकस	सिकंदर के मुख्य सेनापति।
५. ऊर्मिला	राजा आम्भी की इकलौती पुत्री।

मद्र-देश के मन्त्री और सेनापति, सिकंदर के शिविराध्यक्ष।

परिचय

इस नाटक के लेखक प्रस्तुत संग्रह के सम्पादक डा० हरदेव बाहरी हैं। आप हिन्दी भाषा और साहित्य के विशेषज्ञ हैं। आप बहुत पुराने लेखक हैं। सन १६२८ से आप कहानियाँ लिखते आये हैं, परन्तु कुछ वर्षों से गम्भीर विषयों पर चिंतन-मनन कर रहे हैं। हमारे आग्रह से आपने यह एकांकी नाटक लिखा है जिसकी श्री हरिकृष्ण प्रेमी तथा उदयशंकर जी भट्ट ने बड़ी प्रशंसा की है।

डा० बाहरी इतिहास में विशेष रुचि रखते हैं, इस लिए आपका दृष्टिकोण ऐतिहासिक रहता है। प्रस्तुत नाटक का कथानक पंजाब के प्राचीन इतिहास से लिया है। जेहलम चनाब नदियों के बीच का प्रदेश मद्र-देश कहलाता था। इसके अतिरिक्त अभिसार, तक्षशिला (टैक्सला,) आदि छः और राज्य पंजाब में थे जिन पर मद्र-देश के महाराज चंद्र का आधिपत्य था। तक्षशिला का राजा आम्भी सदा इस चेष्टा में रहता था कि चन्द्र की जगह स्वयं अधिपति बने। एक बार चन्द्र और उसका बेटा पुरु तक्षशिला में अतिथि बन कर गए, आम्भी ने चन्द्र को धोके से बन्दी बना लिया और पुरु को किसी अपराध में पकड़वाकर मृत्यु-दण्ड दे दिया; परन्तु आम्भी की इकलौती बेटी उर्मिला ने जो पुरु के पौरुष पर मुग्ध थी पुरु को छुड़वा दिया। चन्द्र की मृत्यु के बाद पुरु मद्र-देश का सम्राट् बना। इन्हीं दिनों यूनान का बादशाह सिकन्दर ईरान और गांधार से होता हुआ भारत पर चढ़ आया। आम्भी ने उसका स्वागत किया। वह सिकन्दर की सहायता से पुरु को परास्त करना और अपनी ईर्ष्या की आग ठंडी करना चाहता था। पहले आम्भी ने ही मद्र-देश पर आक्रमण किया परन्तु हार गया और पकड़ा गया। पुरु ने उसे इस शर्त पर छोड़ दिया कि वह सिकंदर को भारत से निकालने में सहायता करेगा। आम्भी छूटते ही फिर सिकन्दर से जा मिला और उसे रातों-रात मद्र-सेना पर आक्रमण करने की सलाह दी। पुरुकी सेना असावधान थी। जब शत्रु ने एकदम आक्रमण कर दिया तो पुरु की सेना में भगदड़ मच गई। हाथी बिगड़ खड़े हुए और

उन्होंने अपने ही सैनिकों को रौंदना शुरू कर दिया। उसी रात वर्षा हो जाने से कीचड़ हो गया था जिस कारण हाथियों के पांव फिसलने लगे। पुरु की सेना को वीरता दिखाने का अवसर ही न मिला। पुरु हार गया परन्तु सिकन्दर राजनीतिज्ञ था; उसने उसके शौर्य पर प्रसन्न होकर सब जीता हुआ प्रदेश पुरु को वापस सौंप दिया और स्वयं भारत से लौट जाने का निश्चय किया। राजा आम्भी की पुत्री उर्मिला का विवाह पुरु के साथ हुआ और इस प्रकार तक्ष-शिला और मद्र-देश मित्रता और एकता के बंधन में बंध गए।

पहला दृश्य

[स्थान—झेलम नदी के तट पर महाराज पुरु का शिविर। समय—सायंकाल। शिविर में कोई विलास-सामग्री नहीं है। सजावट भी आडम्बर रहित है। हाँ, शिविर में शस्त्रों का बाहुल्य अवश्य है। नेपथ्य में 'मद्र-महाराज पुरु की जय' का घोष निरंतर सुनाई पड़ रहा है। महाराज पुरु, मद्र-सेनापति और मद्र-मंत्री का प्रवेश]

पुरु—सेनापति, सैनिकों से कहो, इस साधारण विजय पर ऐसे जय-घोष की आवश्यकता नहीं है।

सेनापति—तक्षशिला-नरेश पर विजय पाना और उन्हें बंदी बनाना महाराज के लिए साधारण बात हो सकती है, किंतु मद्र-सैनिकों के लिए तो यह उनकी चिरकालीन आकांक्षा की पूर्ति है। वैसे तो पहले भी तक्षशिला-नरेश को हमारी सेनाओं ने आपके स्वर्गीय पिता वीर-प्रवर सम्राट् चंद्र की अध्यक्षता में तीन बार पराजित किया है, किंतु···

पुरु—किंतु क्या ?

सेनापति—किंतु, इस बार आम्भी बंदी बना लिया गया है।

मंत्री—हाँ, और इस बार उस दुष्ट और नीच को उसकी धृष्टता का पूरा-पूरा पुरस्कार दिया जाना चाहिए।

पुरु—एक महाराज के प्रति ऐसे शब्द कहना आर्य योद्धाओं के लिए उचित नहीं है, मंत्री !

मंत्री—क्षमा कीजिए महाराज, मद्र-देश के प्रत्येक हृदय में इस व्यक्ति के प्रति घृणा है। इसने विद्वेष-वश बार-बार पराजित होने पर

भी आक्रमण करना नहीं छोड़ा। हमारे देशवासियों की सुख-शांति को एक युग से ख़तरे में डाल रखा है। उसके लिए 'नीच' और 'दुष्ट' शब्द अपर्याप्त हैं।

पुरु—फिर भी उदारता वीरों का अलंकार है। (सेनापति से) कहाँ हैं महाराज आम्भी ?

सेनापति—दूसरे शिविर में—आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

पुरु—उन्हे यहाँ ले आओ। हम उनके विषय में निर्णय करेंगे। (सेनपति का प्रस्थान)

मंत्री—महाराज, मृत्यु-दंड से कम नहीं...

पुरु—(बात काटकर) मंत्री, तुम्हें मेरी बुद्धि और विवेक पर विश्वास नहीं है ?

मंत्री—है क्यों नहीं महाराज, किंतु उदारता आपका वंशानुगत गुण है, इसीलिए भय होता है कि इस काले नाग को आप फिर न खुला छोड़ दें।

पुरु—भारत के विभिन्न राजवंशों के बैर को पीढ़ियों तक बढ़ाए जाना देश के हित में घातक है।

मंत्री—यह विवेक सभी में जाग्रत हो तभी ना इसका शुभ परिणाम निकले। साँप पर चोट की है तो उसे जीवित छोड़ना सदा के लिए मृत्यु की विभीषिका को आमंत्रित करना है।

(सेनापति के साथ बंदी रूप में आम्भी का प्रवेश

पुरु—(सेनापति से) इनके बंधन खोल दो।

(सेनापति आम्भी के बंधन खोल देता है)

पुरु—आम्भी, हम आज तुम्हारा अंतिम निर्णय करेंगे, तुम आर्य हो, क्षत्रिय हो—तुम्हें तुम्हारे उपयुक्त दंड मिलना चाहिए। (सेनापति से) अपनी तलवार इन्हें दो।

(सेनापति अपनी तलवार आम्भी के आगे रख देता है)

पुरु—उठाओ आम्भी, तलवार उठाओ । मैं तुम्हें एक अवसर और देना चाहता हूँ—मुझसे द्वंदयुद्ध करो।

मंत्री—महाराज !

पुरु—मंत्री, मेरी तलवार पर आपको विश्वास रखना चाहिए । (आम्भी से) उठाओ आम्भी, तलवार उठाओ—और सदा के लिए तक्षशिला और मद्र के संघर्ष को समाप्त कर दो।

आम्भी—(तलवारउठाकर) तलवार उठाने की शक्ति मुझ में है महाराज पुरु, किन्तु (तलवार पुरु के चरणों में रखकर) आज आपकी उदारता ने मुझे मोह लिया है—मुझे क्षमा कीजिए।

पुरु—क्षमा ! तुम्हें आम्भी ! मेरे पूज्य पिता की वृद्धावस्था में अपमान करने वाले व्यक्ति को क्षमा ! वह अतिथि बन कर तुम्हारे यहाँ आये थे—तुमने उन्हें बन्दी बना कर आर्य संस्कृति को कलंकित किया था, आम्भी !

मंत्री—तक्षशिला-नरेश ! एक बार स्वर्गीय महाराज ने भी आप पर दया की थी। कटाचराज के युद्ध में आप को हराकर, बन्दी बना-कर भी जीवित छोड़ दिया था । उसका बदला आपने उन्हें अतिथिरूप में आमंत्रित कर बन्दी बनाकर लिया था । क्या अपराध किया था उन्होंने ?

आम्भी—मैं अपने अपराधों के लिए लज्जित हूं, महाराज ! बदले की भावना ने मुझे आज तक अंधा बनाये रखा था।

सेनापति—(व्यंगपूर्वक) एक दिन हमारे वर्तमान महाराजा को भी तो मृत्यु-दंड सुनाया था आपने । वह किस अपराध में तक्षशिला नरेश ?

पुरु—(हँसकर) अपराध तो मैंने किया था, सेनापति ! एक अरक्षित निस्सहाय अबला पर अत्याचार न सहन कर आततायी कुमार कर्ण का मैंने वध किया था।

मंत्री—अबला की रक्षा करना आपका धर्म था।

पुरु—परन्तु आम्भी मुझे इस धर्म कार्य के लिए फांसी पर लटकाना चाहते थे। इनकी पुत्री कुमारी ऊर्मिला ने मेरी जान बचा दी और इनकी इच्छा पूरी न होने दी !

आम्भी—मुझे और लज्जित न करें। मैंने अनेक अपराध किये हैं—अब पतन के पथ से ऊपर उठना चाहता हूँ।

पुरु—(क्रोध में भर कर) पतन के पथ से ऊपर उठना चाहते हो ? कड़े शब्द मैं प्रयोग नहीं करना चाहता—फिर भी मैं समझता हूँ तुम्हारे लिए कोई भी शब्द कठोर नहीं है। तुम ने विदेशी यवन सिकंदर को भारत की स्वाधीनता को पददलित करने के लिए बुलाया। मैं अपने और पिताजी के अपमान को भूल सकता हूँ—किंतु देश के प्रति तुम्हारा विश्वासघात असह्य है।

आम्भी—मैं कह चुका हूँ, मुझे प्रतिशोध की भावना ने पागल बना दिया था। महाराज मैंने सिकंदर को भारत भूमि में आगे बढ़ने के लिए उत्साहित किया है—किंतु आप अवसर देंगे तो सम्राट सिकंदर के विश्व-विजय के स्वप्न को चकनाचूर मैं ही करूँगा !

पुरु—आम्भी, तुम विषैले सर्प हो—तुम पर विश्वास नहीं करूँगा। यवनों से युद्ध करने की शक्ति मेरी भुजाओं में है। तुम्हारे जैसे विश्वासघातकों को दण्ड देने की भी। राजहत्या का पाप तुमने किया है—देश-द्रोह का अपराध भी तुम्हारे सर पर है। बोलो, क्या दण्ड तुम्हें दिया जाय ? मुझ से द्वन्द्-युद्ध नहीं करना चाहते तो मुझे न्याय करना ही पड़ेगा।

आम्भी—मैं अपने आपको आर्य और क्षत्रिय किस मुंह से कहूँ—मेरे भूतकाल ने मेरा मुंह बंद कर दिया है—किंतु आप तो क्षत्रिय हैं—आर्य हैं—उदारता, क्षमा और दया को आप क्यों छोड़ते हैं। मैं अपना जीवन आपको समर्पित करता हूँ शरण में आता हूँ! क्या आप शरणागत को ठुकरा देंगे ?

पुरु—हूं (सोच में पड़ जाते हैं)

मन्त्री—(शंकित होकर) शत्रु पर दया करना राजनीति के विरुद्ध है महाराज !

पुरु—किंतु, गुरुदेव ने तक्षशिला—विश्वविद्यालय के दीक्षान्त उत्सव पर आदेश दिया था कि पुरु, तुम्हारे राज्य की नींव सत्य, धर्म और दया पर होनी चाहिए। गुरुदेव की आज्ञा का मैं पालन करूँगा। आम्भी, जाओ मैंने तुम्हें क्षमा किया।

मत्री—(साश्चर्य) क्षमा !

आम्भी—महाराज पुरु की जय ! आपकी उदारता का मैं बदला चुकाऊँगा। सिकंदर को भारत से वापिस करूँगा।

पुरु—(सेनापति से) तक्षशिला नरेश को आदर सहित झेलम पार पहुँचा दो।

सेनापति—जो आज्ञा !

(आम्भी और सेनापतिका प्रस्थान)

पुरु—मंत्री जी, मेरी आत्मा इस समय बहुत संतुष्ट है।

मन्त्री—किंतु मेरा मन आशंका से काँप रहा है। स्वार्थी पुरुष कभी वचन पर दृढ़ नहीं रहता। ऐसे समय जब कि विदेशी सैन्य-दल टिड्डी-दल की तरह मँडरा रहा है—अपने वैरी को चंगुल में पाकर छोड़ देना वीरता का कार्य भले ही हो—किंतु बुद्धिमानी का नहीं। आपने जान-बूझ कर संकट मोल लिया है।

पुरु—संभव है, आपका कथन सत्य ही हो—किंतु संकट से डर कर मनुष्यता का पथ छोड़ देना आर्यों का धर्म नहीं है, मंत्री जी ! आइए, मेरे साथ आइए, जरा झेलम के तट पर शत्रु की गति-विधि को देखा जाय।

(दोनों का प्रस्थान)

[पट परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

[स्थान—झेलम के पश्चिमीय तटपर सिकन्दर का सैनिक शिविर। समय—सायंकाल। शिविर की सजावट में यूनानी कला स्पष्टरूप से प्रकट है जिसमें कमनीयता के स्थान पर भव्यता व्यापक रूप में पाई जाती है। शिविर में यथास्थान शस्त्रास्त्र रखे हुए हैं जिनके निर्माण मे भी भारतीयता नजर नहीं आती। यूनानी सम्राट् सिकन्दर और मुख्य सेनापति सेल्यूकस बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।]

सिकंदर—सेल्यूकस, हमारे सहायक आम्भी को तो महाराज पुरु ने पराजित करके बंदी बना लिया है इससे हमारी भारत-विजय की योजना में कुछ बाधा तो पड़ेगी ?

सेल्यूकस—सम्राट् ! यूनानियों को आपकी वीरता पर विश्वास है और पराजय शब्द से वे परिचित नहीं हैं।

सिकन्दर—मुझे भी अपने यूनानी सैनिकों पर अभिमान है, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारत की चप्पा-चप्पा भूमिपर पाँव रखने के लिए हमें जितना संघर्ष करना पड़ा है—उतना कहीं नहीं करना पड़ा।

सेल्यूकस—भारतवासी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने प्राणों पर खेलने को सदा प्रस्तुत रहते हैं, इसमें तो सन्देह नहीं है।

सिकन्दर—वे रण कुशल भी हैं—इसका प्रमाण महाराज पुरु ने दे दिया है। झेलम नदी से पार जाने के सारे नाके उन्होंने रोक दिये हैं—दिन पर दिन गुज़रते जा रहे हैं किंतु हमें उस पार पहुँचने का अवसर ही नहीं मिलता।

(एक यूनानी सैनिक का प्रवेश और सिकंदर को अभिवादन करना)

सिकन्दर—क्या समाचार है, सैनिक !

सैनिक—एक मद्र-दूत हमारे शिविर के पास मरा पाया गया है। उसके पास......

सिकन्दर—(सक्रोध) मरा पाया गया है ! किसने मारा उसे ?

सैनिक—किसी हमारे ही सैनिक ने मारा होगा। शत्रु को मार डालने में कोई हानि......

सिकन्दर—हानि का प्रश्न नहीं है सैनिक, यह प्रश्न है आदर्श का, रणनीति का नैतिकता, मनुष्यता और सभ्यता का। हम यूनानी भी आर्य हैं और भारतीय भी आर्य हैं। हमारे यहाँ दूत अवध्य है।

सैनिक—किसी सैनिक से भूल हो गई, सम्राट्। (एक पत्र आगे बढ़ा कर) उस दूत के पास यह पत्र था।

(सिकन्दर पत्र लेकर सेल्यूकस को देता है)

सिकन्दर—(सेल्यूकस से) पढ़ो, क्या लिखा है। (सैनिक से) तुम शिविर-अध्यक्ष को मेरे पास भेजो।

(सैनिक का अभिवादन करके प्रस्थान)

(पत्र को मन ही में पढ़कर, सक्रोध)

सेल्यूकस—उद्धत ! अभिमानी !! दुस्साहसी !!!

सिकन्दर—किसे इतने अपशब्द कह डाले, सेल्यूकस !

सेल्यूकस—पुरु को, सम्राट् ! वह विश्व-विजयी सम्राट् सिकन्दर की शक्ति को नहीं जानता। जान-बूझकर मौत को निमन्त्रण देता है।

सिकन्दर—क्या लिखा है ?

सेल्यूकस—लिखा है यूनानी सेना भारतभूमि की सीमा तुरन्त छोड़ दे, अन्यथा उसका अभिमान चूर्ण कर दिया जायगा।

सिकन्दर—एक देश-प्रेमी इसके अतिरिक्त और क्या लिखता ? हाँ—आगे पढ़ो।

सेल्यूकस—लिखा है—मद्र-देश के स्वामी ने किसी के सामने मस्तक नहीं झुकाया—उसका मस्तक भारतीय वीरता का प्रतीक है—वह कटना जानता है—झुकना नहीं।

सिकन्दर—और सिकंदर भी उसी को झुकाना चाहता है, जिसने झुकना नहीं जाना। यह मक्खन पर तलवार चलाने नहीं निकला है, चट्टानों से टकराने निकला है।

सेल्यूकस—पुरु को यूनान विश्व-विजयी सम्राट् की शक्ति का अनुमान नहीं है। मुट्ठी भर सैनिक लेकर हमारी ईरान और गांधार को जीतने वाली सेना का वेग रोकना चाहता है।

(शिविर के अध्यक्ष का प्रवेश)

अध्यक्ष—(अभिवादन करके) आज्ञा सम्राट् !

सिकन्दर—अब आपकी आवश्यकता नहीं।

अध्यक्ष—(घबराकर) अर्थात् मुझे सेवा से पृथक् कर दिया गया। मेरा अपराध........

सिकन्दर—(मुस्कराकर) नहीं, नहीं ! मैं चाहता था कि मद्र-देश के दूत की हमारे जिस सैनिक ने हत्या की है—तुम उसका पता लगाओ—उसे मृत्यु-दण्ड देने की व्यवस्था करो। लेकिन अब इसकी आवश्यकता नहीं है। महाराज पुरु ने यूनानी स्वाभिमान को चुनौती दी है। उनके न झुकने वाले मस्तक को झुका कर ही मुझे चैन मिलेगा। (अध्यक्ष से) तुम जाओ।

(अध्यक्ष का प्रस्थान)

सेल्यूकस—निश्चय ही, सम्राट् ! हमें बिना विलम्ब शत्रु पर आक्रमण........

सिकंदर—किन्तु झेलम......

सेल्यूकस—आम्भी की दी हुई ७० नौकाएँ हमारे पास हैं—नौकाओं का पुल बना कर अभी......

सिकंदर—अभी रातों-रात पार चलें। रात में युद्ध करना आर्यों के युद्ध-नियमों के विरुद्ध है। यूनान के मस्तक पर युद्ध-नीति के विरुद्ध चलने का कलंक सिकंदर नहीं लगने देगा।

सेल्यूकस—फिर ?

सिकंदर—आज जब पूर्व का आकाश सूर्य की रक्तिम किरणों से लाल होगा तब झेलम का पानी भी यूनानियों के रक्त से लाल होगा। हम शत्रु के तीरों का सामना करते हुए पार उतरेंगे। रात में उन्हें असावधान पाकर नहीं।

सेल्यूकस—किन्तु, यह तो आत्म-हत्या है.......

सिकंदर—(चिंता में पड़कर) जान पड़ता है—मेरा विश्व-विजय का स्वप्न झेलम के पानी में सदा के लिए डूब जायगा।

(आम्भी का प्रवेश)

आम्भी—नहीं सम्राट्, आम्भी के जीवित रहते आपको निराश होने की आवश्यकता नहीं।

सिकंदर—(साश्चर्य) एँ! तुम आम्भी, क्या तुम्हारे बंदी होने का समाचार झूठ था ?

आम्भी—परम सत्य है सम्राट्! किन्तु वीरता के मद में मस्त रहने वाले पुरु को शब्द-जाल में फँसा कर उसके बन्धन से छूट आना आम्भी के लिये।बाएँ हाथ का खेल है।

सिकन्दर—तुमने क्या कहा उनसे ?

आम्भी—मैंने कहा—आम्भी मुक्त होकर पुरु का मित्र और सिकंदर का शत्रु होगा।

सिकंदर—तो पुरु को दिए हुए वचन का तुम पालन नहीं करोगे? वचन का कोई मोल नहीं है तुम्हारे लिए, आम्भी !

आम्भी—सम्राट् ! मद्र और तक्षशिला की वंशानुगत शत्रुता है—वे मिल नहीं सकते।

सिकंदर—पुरु ने तुम्हारा विश्वास कैसे किया।

आम्भी—वह अन्धा है और मूर्ख—कहता है सत्य और दया की नींव पर उसके शासन की इमारत खड़ी है।

सिकंदर—पुरु सच्चा मनुष्य है—परम उदार, वीर और कपटहीन।

आम्भी—वह आपके मार्ग का सबसे बड़ा कंटक है, सम्राट् ! उसे शीघ्र दूर कीजिए। मेरी राय में आज रात को झेलम पार उतर कर शत्रु पर आक्रमण कर दिया जाय।

सिकंदर—यह न्याय संगत नहीं है।

आम्भी—युद्ध में सदा न्याय की रक्षा नहीं की जा सकती।

सेल्यूकस—हमारे सैनिक पड़े-पड़े ऊब गए हैं—उत्साह-हीन हो गए हैं—वापिस लौटना चाहते हैं।

आम्भी—उन्हें यदि झेलम पार करने में अधिक संकट सहना पड़ा तो उनपर नियन्त्रण रखना संभवतः कठिन हो जायगा।

सेल्यूकस—और हमारे विलंब करने से अभिसारनरेश भी हमसे युद्ध करने आ पहुंचेंगे—फिर मद्र और अभिसार दो शक्तियों से एक साथ लड़ना पड़ेगा।

आम्भी—अभिसारनरेश अब नहीं आएँगे ! मैंने उन्हें युद्ध से विरत कर दिया है।

सिकंदर—कैसे ?

आम्भी—अपनी बेटी उर्मिला का उनसे विवाह करने का प्रलोभन देकर।

सिकंदर—तुम बड़े चतुर हो आम्भी, हम तुम्हें उचित पुरस्कार देंगे।

आम्भी—पुरु की पराजय मेरे लिए सबसे बड़ा पुरस्कार है सम्राट् ! इसीलिए आपसे निवेदन है कि इस समय शत्रु असावधान है। युद्ध पर विजय पाने की खुशी में वह उत्सव मना रहा है। इस समय हम पार जाकर शत्रु पर धावा बोल सकते हैं। मैं उस स्थान को जानता हूँ जहाँ झेलम में जल कम है—वहां से सहज ही हमारी सेना पार निकल जायगी।

(बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई देती है)

सेल्यूकस—और यह बादलों की गड़गड़ाहट कह रही है कि अभी जोर की वर्षा होगी। घटाओं ने घोर अंधकार कर दिया है—अंधकार में हमारी सेना के जाने का पता भी शत्रु को नहीं लगेगा।

आम्भी—और वर्षा होने से जो कीचड़ होगी उससे पुरु की गज-सेना बेकार हो जायगी। ऐसा सुयोग फिर नहीं मिलेगा सम्राट् !

सिकंदर—आप लोगों की इच्छा पूरी हो। चलो, चलकर झेलम पार जाने का प्रबन्ध किया जाय।

(सबका प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

[स्थान—ऊर्मिला का तम्बू । समय—रात का पहला प्रहर ।
ऊर्मिला सो रही है। आम्भी का प्रवेश]

आम्भी—बेटी ऊर्मिला, उठो, हम अभी यहां से कूच कर रहे हैं। सेनाएँ तैयार हैं।

उर्मिला—किधर, पिताजी !

आम्भी—यवन-सेना यहाँ से नदी पार करने में असमर्थ है। सिकंदर चाहता है कि किसी दूसरे स्थान से झेलम पार करके मद्र-सेना पर चढ़ाई की जाय।

उर्मिला—तो मैं क्या करूँ ?

आम्भी—हमारे साथ नहीं चलोगी क्या ?

उर्मिला—नहीं ! आपको भी नहीं जाने दूँगी। आप महाराज पुरु को वचन दे चुके हैं। मैं अभी घड़ी भर पहले पुरु से मिलकर आ रही हूँ। आपने उनको अपना अधिपति स्वीकार किया है। आपने यवन सेनाओं को इस देश से बाहर निकालने में उन्हें सहायता देने का वचन दिया है।

आम्भी—बेटी तुम भोली हो। तुम राजनीति की बात क्या जानो !

उर्मिला—मैं इतना तो जानती हूँ कि पुरु ने परम उदारता से आपको छोड़ दिया है। कृतघ्नता महा पाप है। मैं यह भी जानती हूँ कि देश-द्रोही नरक का अधिकारी होता है। आप अपने देश को यवनों द्वारा पराजित होने में सहायता न दीजिये।

आम्भी—ऊर्मिला, पुरु मेरा शत्रु है। शत्रु को परास्त करना मेरा धर्म है। किस ढंग से वह परास्त हो सकता है, नीति में इसका

कोई नियम नहीं है। सब साधन उचित हैं। तुम इन बातों को क्या समझो ?

उर्मिला—मैं आपसे फिर प्रार्थना करूँगी कि पुराने वैर-भावों को त्याग कर पुरु का साथ दें। वह अपना शत्रु नहीं है। आपको क्षमा-प्रदान करके उसने मित्रता का प्रमाण दिया है। सिकंदर इतना भी न कर सकेगा। अवसर पाकर वह आपको धोखा दे देगा। विदेशी को मित्र समझना, पड़ौसी को शत्रु बनाना, बुद्धि संगत नहीं है।

आम्भी—(क्रोध से)—उर्मिला, तुम मुझे निर्बुद्धि समझती हो !

उर्मिला—नहीं पिता जी, मैं तो साधारण नीति की बात कहती हूं।

आम्भी—बस, बस ! मैं जानता हूँ कि तुम पुरु का पक्ष करती हो। तुम पहले भी उसकी सहायता कर चुकी हो। याद है जब तुमने पुरु को कारागार से निकाल दिया था। यदि तुमने राजमुद्रा चुरा कर और उसकी मुक्ति का आज्ञापत्र लिखकर उसकी सहायता न की होती तो आज आम्भी मद्र देश का सम्राट् होता। (कुछ ठहर कर) और अब भी मैं देख आया हूं। तुम्हारा घोड़ा 'रत्न' पुरु की सवारी का काम दे रहा है। बेटी ! तुम यह मेरे साथ अन्याय कर रही हो। मद्र-देश का सम्राट् बनना मेरे जीवन का एक-मात्र लक्ष्य है। मेरे पश्चात् तुम्हीं मद्र-देश की स्वामिनी बनोगी।

उर्मिला—मैं ऐसा साम्राज्य नहीं चाहती। मुझे विश्वास नहीं कि सिकंदर या सेल्यूकस हमें यह राज्य भोगने का अवसर देंगे।

आम्भी—मैं तुम्हें इसका विश्वास दिलाता हूँ।

उर्मिला—मैं यह भी कैसे मान लूं कि मद्र-देश आपके हाथ आ जायगा। पुरु परम शूर है। उस को जीतना असम्भव है।

आम्भी—मैं तुम्हें शुभ समाचार सुना दूं। अभिसार नरेश हमारे विरुद्ध नहीं लड़ेंगे।

उर्मिला—क्यों? उन्होंने तो सिकन्दर को यह लिख भेजा था कि हम यह सहन न कर सकेंगे कि कोई विदेशी हमारी पवित्र मातृ-भूमि में आकर पांव रखे।

आम्भी—हाँ, वे सिकन्दर की सहायता तो नहीं करेंगे, परन्तु उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया है कि ये पुरु से मिल कर हमारा विरोध भी नहीं करेंगे।

उर्मिला—बड़ा नीच है अभिसार का राजा।

आम्भी—वे तो तुम्हारी स्तुति करते थकते नहीं और तुम उनकी यों निन्दा करती हो। मैंने जब यह प्रस्ताव किया कि आप ऊर्मिला को अपनी रानी बनायें तो उनकी बांछें खिल गईं।

उर्मिला—मैं समझी! अर्थात् आप उनसे सौदा कर रहे हैं। आप अपनी बेटी देकर उससे पुरु का विरोध चाहते रहे। नहीं पिता जी! मैंने मन से पुरु को अपना पति धारण कर लिया है। आर्यकन्या एक पति के होते हुए दूसरा विवाह न करेगी।

आम्भी—बेटी ऊर्मिला, राजनीतिक..............................

उर्मिला—मैं राजनीतिक विवाह नहीं करूंगी। मैं धर्म सम्बन्ध चाहती हूँ।

आम्भी—ऊर्मिला, मैं पहले ही बहुत दुखी हूँ। मुझे और नरक में मत धकेलो। मैं अभिसार नरेश को क्या जवाब दूंगा। मैं नहीं चाहता कि तुम पुरु से विवाह करो। पुरु मेरा शत्रु है। क्या तुम मेरे शत्रु से विवाह कर लोगी? ऐसी सन्तान!

उर्मिला—अच्छा पिता जी, मैं विवाह ही नहीं करूंगी। मैं जीवन-भर कुँवारी रह कर आपकी सेवा करूंगी। ठीक है ना!

आम्भी—मेरी सेवा यही है कि अभिसार नरेश को अपना जीवन साथी स्वीकार करो।

उर्मिला—आर्यकन्या को आप यह बात फिर न कहिये। मैं···

[नेपथ्य में भेरी का शब्द]

आम्भी—वह सुनो सेनाएँ कूच कर रही हैं। मैं जाता हूँ। तुम क्या यहीं रहोगी।

उर्मिला—हाँ, यहीं।

आम्भी—तुम तो कहती थीं कि मैं युद्ध का दृश्य देखूँगी। क्षत्रियों को लड़ते देखूँगी।

उर्मिला—हाँ।

[नेपथ्य से आवाज—'महाराज आम्भी की जय हो']

आम्भी—अच्छा, मैं जाता हूँ। तुम चाहो तो तक्षशिला लौट जाओ।

उर्मिला—मुझे भी अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना ही होगा।

[आम्भी का प्रस्थान—इसके बाद ऊर्मिला भी दूसरी ओर चली जाती है]

(पट-परिवर्तन)

चौथा दृश्य

[झेलम के पूर्वी तट पर एक जंगल में सिकन्दर का तम्बू लगा है। समय—प्रातःकाल मिकन्दर बीच में एक शानदार सिंहासन पर बैठा है। आस-पास आम्भी, सेल्यूकस आदि हैं]

सिकन्दर—महाराज पुरु को सम्मान के साथ भीतर लाओ।

(सैनिक का बाहर जाना)

(आम्भी से) तुम्हारी राजनीति सफल रही। परन्तु मैं समझता हूँ—यह विजय हमारा सर्वनाश है। सिकंदर की नाड़ियों में भी आर्यों का खून है। आज तक उसने ऐसे ओछे उपायों से काम न लिया था। रात के अन्धेरे में छुप-छुप कर जाना, सोई हुई मद्र-सेना पर आक्रमण करना, वीरों को शोभा नहीं देता। यदि रात को वर्षा न हो जाती तो धरती की मिट्टी हमारी सेना के खून से लाल हो गई होती। वर्षा के कारण कीचड़ में पुरु की गज-सेना फिसलने लगी! पुरु का हाथी गिर पड़ा और चिंघाड़ मारता हुआ भाग निकला। मद्र-सेना ने समझा 'पुरु हार गया।' सेना भाग खड़ी हुई! हमारे घुड़सवारों ने पीछा किया!

आम्भी—परमात्मा ने वर्षा करके हमें आशीर्वाद दिया।

सिकन्दर—आम्भी, हमने धोका किया। पुरु महावीर है! वह भागते हुए हाथी से कूद पड़ा और एक घोड़े पर सवार होकर मुड़ा, परन्तु न जाने वह घोड़ा क्यों बिदक गया! पुरु ने घोड़ा छोड़ दिया और पैदल ही हमारे घुड़सवारों पर टूट पड़ा और ऐसे तीखे वार किए कि पलक मारते-मारते १००—१२० यवनों का वध कर डाला। ओह ? कितना तेज था उसमें। उसकी दोनों तलवारें टूट गईं। कुछ क्षणों तक वह ढाल से अपनी रक्षा करता रहा। यदि वहाँ पर उसका एक भी साथी होता तो उसे तलवार देकर बचा लेता। परन्तु

हमारे सैनिकों ने उसे पकड़ लिया। इस अवस्था में भी वह लड़ा और ४ आदमियों को धरती पर पटक कर मार डाला।

आम्भी—देखा न, आप तो न्याय-न्याय की पुकार मचा रहे हैं, और पुरु अंत तक क्रूरता से बाज़ न आया। कितना अत्याचार किया उसने—

सिकन्दर—नहीं, आम्भी, अत्याचार हमने ही किया। जब उसकी तलवारें टूट गईं थीं, तब उस पर वार करना आर्योचित नहीं था।

आम्भी—मैं तो एक बात जानता हूं—अन्त भला सो भला। विजय हमारे हाथ रही है।

[बंदी रूप में सैनिकों के बीच पुरु का प्रवेश]

सिकन्दर—नहीं, नहीं वास्तविक विजय पुरु को प्राप्त हुई है। हम हार गये। हमने धर्म का त्याग किया। कायरता का प्रदर्शन किया। (पुरु से) आप हमारे बंदी हैं। कहिये आप से कैसा व्यवहार किया जाय।

पुरु—जैसा राजा को राजा से करना चाहिए।

सिकन्दर—ठीक है मैंने अनेक देशों को विजय किया, परन्तु आप जैसा वीर-धीर योधा मैंने आज तक न देखा था। मेरा भारत में आना सफल हुआ।

आम्भी—आप अब इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी बने हैं।

सिकन्दर—नहीं, सिंधु नदी से लेकर यहां तक हमने जितने राज्य जीते हैं, उनके अधिपति महाराजाधिराज पुरु हैं।

आम्भी—[तलमलाते हुए] हैं। पुरु? और मैं?

सिकन्दर—चौंकिए नहीं, आम्भी! आपके योग्य पुरस्कार आप भी पाएँगे [सैनिकों से] सम्राट् पुरु की बेड़ियाँ खोल दो।

[सैनिक बेड़ियां खोलते हैं]

[सेल्यूकस का प्रवेश]

सेल्यूकस—जहांपनाह ! मद्र-देश की सेना ने हमारी सेना पर फिर आक्रमण कर दिया।

पुरु—वह क्यों ?

सेल्यूकस—तक्षशिला की राजकुमारी ऊर्मिला से उत्तेजना पाकर भागते हुए मद्र सैनिक थम गये। राजकुमारी उसी घोड़े पर सवार हैं जिस पर पकड़े जाने से पहले पुरु थे।

पुरु—'रत्न' राजकुमारी का ही घोड़ा है। उसने वह मुझे भेंट किया था।

सिकंदर—समझा ! सेल्यूकस, तुरन्त जाकर सन्धि की श्वेत-ध्वजा फहरा दो और राजकुमारी से स्वयं जाकर कहो कि सिकंदर भारत की देवी को प्रणाम करता है। कह दो— पुरु सुरक्षित हैं। चिन्ता मत करो। हमने उनको उत्तर-भारत का सम्राट मान लिया है।

सेल्यूकस—जो आज्ञा।

[जाने लगता है]

पुरु—ठहरो। [अंगूठी उतारते हुए] यह अंगूठी राजकुमारी ऊर्मिला को देकर विश्वास दिलाओ कि हम......[सोच कर] अच्छा, तुम ठहरो। हम स्वयं तुम्हारे साथ चलते हैं।

सिकंदर—हम भी चलेंगे।

पुरु—नहीं, मित्रवर, ऐसी अवस्था में आपका जाना उचित नहीं है, राजकुमारी तथा मद्र-सैनिक उत्तेजना में कहीं आप पर आक्रमण न कर दें। आप यहीं रहें। हम अभी आ रहे हैं। चलो, सेल्यूकस !

[पुरु और सेल्यूकस का जाना]

आम्भी—यवनराज, आपने अपने वचन का पालन नहीं किया।

सिकंदर—देश के विश्वासघात करने वाला वचन पालन की बात किस मुँह से कहता है। विश्वासघात तो तुम्हारा स्वभाव है, आम्भी—पुरु की दया ने तुम्हें जीवन-दान दिया था—उसीकी जान के तुम ग्राहक बने—कृतघ्न कुत्ते!

आम्भी—भारत की सीमा में आप मेरी ही सहायता से आये हैं, सम्राट्! और आज मुझ को शत्रु समझ रहे हैं। पता नहीं, आप यह नाटक कर रहे हैं—या सत्य कह रहे हैं।

सिकंदर—नाटक करना सिकंदर का काम नहीं। नाटक तो आप करते रहे हैं, आम्भी! आपने समझा है कि सिकंदर ने उस नाटक को जाना नहीं—यह आपकी मूर्खता है। याद रखो देश-द्रोही आम्भी का शत्रु भी सम्मान नहीं करता। देशपर मर मिटना, देश-द्रोह द्वारा सुख, वैभव, प्रभुता प्राप्त करने से कहीं श्रेयस्कर है।

(पुरु सेल्यूकस और ऊर्मिला का प्रवेश)

सिकंदर—आओ राजकुमारी उर्मिला, तुमने भारत के मान को चार चाँद लगा दिए हैं। मैं तुम से प्रसन्न हूं। (आम्भी से) आप उर्मिला जैसी वीर बाला के पिता हैं—इसलिए मैं आपको क्षमा करता हूँ। (उर्मिला से) इधर आओ—बेटी! मैं तुम्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ। महाराज पुरु, आप भी इधर आइए। (पुरु को उर्मिला का हाथ पकड़ा कर) आज से तक्षशिला और मद्र दोनों देश एक-प्राण हों—यह मेरी कामना है। तक्षशिला और मद्र ही नहीं—सम्पूर्ण भारत एकता के महत्त्व को समझे और अपनी प्राचीन और उच्च संस्कृति की रक्षा करे। झेलम के तट
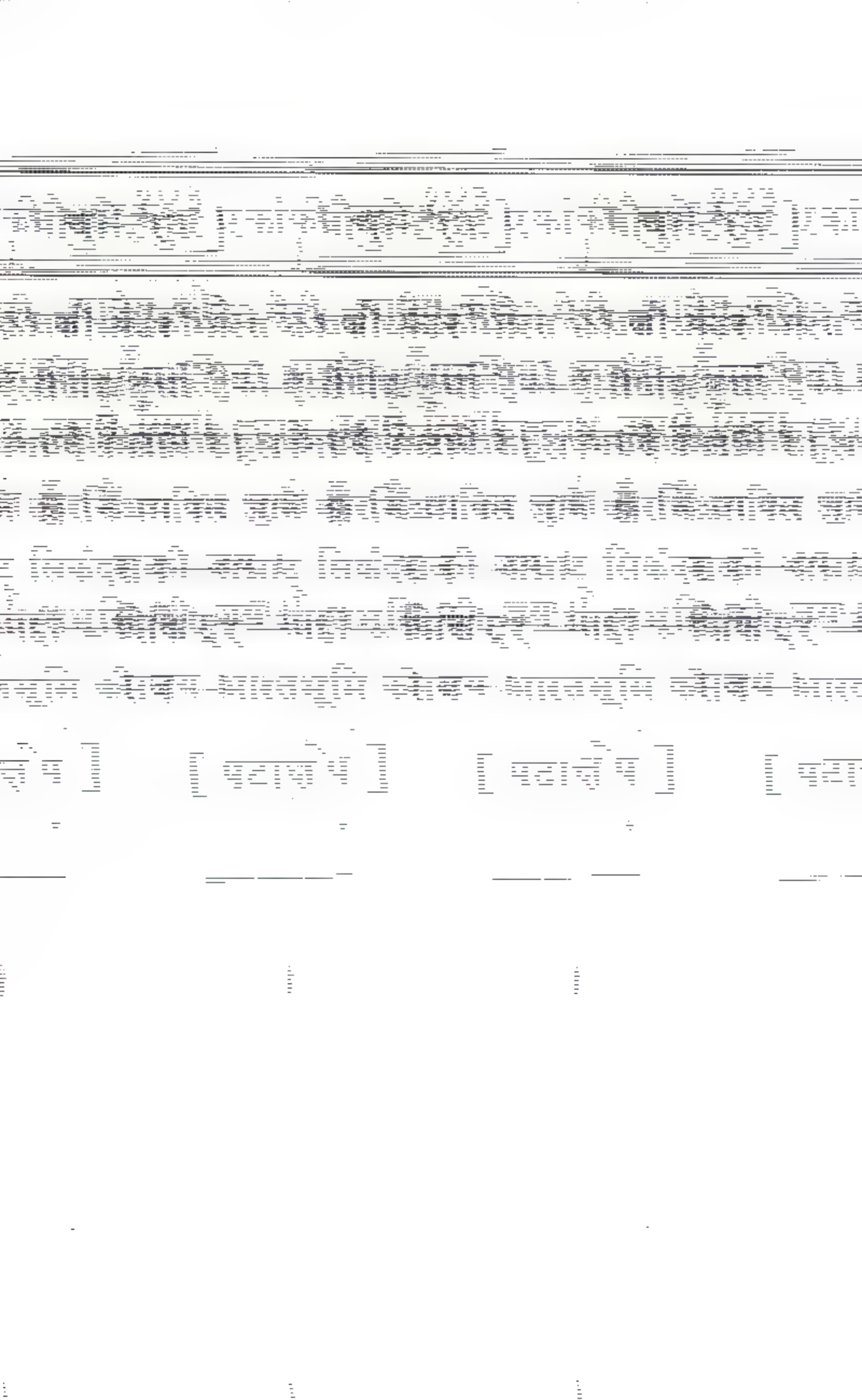
सीता-राम

सीता-राम

नाटक के पात्र

पुरुष—

राम	...	रघुकुलभूषण, अयोध्यानरेश
लक्ष्मण	...	राम के लघु भ्राता
वाल्मीकि	...	महर्षि [रामायण के रचयिता]
वसिष्ठ	....	मुनि [राम के कुलगुरु]
लव, कुश	....	राम के पुत्र
जनक	...	मिथिला-नरेश, सीता के पिता
चन्द्रकेतु	...	लक्ष्मण के पुत्र
ऋषिकुमार	...	वाल्मीकि ऋषि के आश्रमवासी शिष्य
दुर्मुख	...	राम का गुप्तचर
सुमन्त्र	...	चन्द्रकेतु के सारथि और अयोध्या के मंत्री
सिपाही	...	चन्द्रकेतु के सैनिक
		कंचुकी, द्वारपाल, चोबदार आदि

स्त्री—

कौसल्या	...	राम की माता
अरुन्धती	...	वसिष्ठ की पत्नी
सीता	...	जनक-दुलारी, राम की पत्नी, लव-कुश की माता
सखी	...	वन-सहचरी

परिचय

इस नाटक के लेखक आचार्य श्री चतुरसेन जी शास्त्री हैं। आप दिल्ली में रहते हैं और कई वर्षों से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। आप बड़े प्रसिद्ध उपन्यासकार, कहानी-लेखक और नाटककार हैं। इस समय तक आपके २५-३० एकांकी नाटक विविध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके अतिरिक्त दो बड़े नाटक 'अमर राठौर' और 'उत्सर्ग' प्रकाश में आ चुके हैं। आपकी अधिकतर कहानियों तथा नाटकों के कथानक इतिहास से लिये हुए हैं। प्रस्तुत नाटक रामायण की कथा से लिया गया है।

चौदह वर्ष का बनवास पूरा करने के बाद श्रीराम और सीता अयोध्या में राज्य कर रहे थे कि एक दिन नगर में प्रभावपूर्ण घटना घटी। एक धोबी अपनी धोबन से, जो कि बिना उससे पूछे अपने बाप के घर चली गई थी, नाराज़ होकर कहने लगा कि मैं रामचन्द्र नहीं हूँ जो राक्षस के घर गई हुई सीता को फिर अपने घर रख लिया। जब रामचन्द्रजी ने यह बात सुनी तो उन्होंने सोचा कि यदि प्रजा के मन में ऐसा अपवाद है तो कहीं ऐसा न हो कि प्रजा में बुरा आदर्श कायम हो जाय। ऐसा विचार उन्होंने गर्भवती सीता को त्यागकर बन में भिजवा दिया। वहां वह वाल्मीकि के आश्रम में रहने लगीं। वहीं उनके लव और कुश दो पुत्र पैदा हुए।

१८ वर्ष बाद रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ किया। अश्वमेध का घोड़ा लक्ष्मण के पुत्र चन्द्रकेतु की रक्षा में प्रांत-प्रांत में फिरने लगा। जब वह घोड़ा वाल्मीकि जी के आश्रम में पहुँचा तो लव और कुश ने बांध लिया। चन्द्रकेतु ने लव-कुश से युद्ध किया। बहुत से सैनिक मारे गये और लव-कुश के युद्ध-कौशल ने चन्द्रकेतु को परेशान कर दिया। इतने में महाराज रामचन्द्रजी ने आकर युद्ध रोक दिया और जब बाद में उन्हें मालूम हुआ कि यह मेरे ही पुत्र हैं तो उनका प्रेम उमड़ आया। यहीं पर सीता जी से भेंट हुई। सीता ने अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिए धरती माता से प्रार्थना की, धरती फट गई और सीता उसमें समा गई।

पहला दृश्य

[अयोध्या का राजमहल। सन्ध्या का समय। राम और सीता सिंहासन पर विराजमान हैं। लक्ष्मण उनसे कुछ नीचे होकर बैठे हैं। उनके आगे चित्र पड़े हैं जो वे एक एक करके सीता और राम को दिखा रहे हैं।]

लक्ष्मण—देखिए भाभी, कैसे अच्छे चित्र बने हैं। इनमें हमारे संपूर्ण जीवन की कथा आ गई है।

राम—वत्स लक्ष्मण, देवी के मन को रिझाने के तुम्हें खूब ढंग आते हैं। देखें-देखें, कैसे चित्र हैं ? अरे, यह तो जनकपुरी की छवि है !

सीता—अहा, नये खिले कमल-जैसे महाराज कैसे चुपचाप महात्मा विश्वामित्र के पास खड़े हैं और देवर जी भी कैसे सलोने बने हैं ! देखिए पिता जी अचरज में भरकर आपका रूप निहार रहे हैं।

लक्ष्मण—देखिए भाभी; यह गुरु वसिष्ठ की आप के पिता पूजा कर रहे हैं। विवाह का मण्डप सजा है। राजा, रानी, ऋषि, मुनि, देव, गन्धर्वों की भीड़ लगी है। यह आप हैं, यह भाभी माण्डवी हैं, यह बहू श्रुतिकीर्ति है।

सीता—अजी देवर जी; यह चौथी कौन है ?

लक्ष्मण—यह............जाने दीजिए। वह देखिए परशुराम जी हैं ?

सीता—मैं डर गई।

राम—(दूसरी ओर देखकर) अरे, यह तो अयोध्या की उस समय की छवि है, जब हम विवाह करके लौटे थे। कैसा आनन्द मंगलाचार हो रहा है।

सीता—आह, महाराज को आँखों में आंसू क्यों आ गये ?

राम—देवी, पिता जी की छवि देख उनके चरणों की याद आ गई। हाय, वे चरण अब कहां हैं ?

लक्ष्मण—यह मन्थरा और मँझली माता हैं।

राम—(दूसरा चित्र देखकर) अहा, चित्र में गंगा की धारा कैसी बह रही है; ऋषियों के आश्रम कैसे भले मालूम देते हैं।

लक्ष्मण—धन्य महाराज, आपने मँझली माँ का चित्र तो देखा भी अनदेखा कर दिया।

राम—जाने दो भाई। यह देखो, यही चित्रकूट के रास्ते में वह बड़ का पेड़ है, जिसे भारद्वाज मुनि ने हमें बताया था। देखो, यमुना के जल में इसकी परछाईं कैसी काँपती हुई दीख रही है।

सीता—क्या महाराज को अभी तक इसी स्मृति बनी है।

राम—भला, इसे मैं भूल सकता हूँ ? इसी के नीचे बैठकर मैंने तुम्हारे पैरों से काँटा निकाला था और तुमने अपने आँचल से मेरे मुँह का पसीना पोंछा था। अरे ! देवी रोने क्यों लगीं।

सीता—महाराज, उस दुःख में भी कैसा सुख था। राज्य का यह बोझ तो जैसे हमें दबाये डालता है। महाराज, मेरे मन में एक सधौरी हुई है।

राम—कैसी सधौरी देवी ?

सीता—मैं चाहती हूं कि एक बार फिर वन में विहार करूँ और जंगल में नदी के जल में किलोलें करूँ। अहा ! वे दिन भी कैसे प्यारे थे, जब चाँदनी रात में गोदावरी के किनारे हमारी

कुटिया थी; फूल हमें देखकर हँसते थे ; हवा हमसे अठखेलियाँ करती थी; तारे हमें झाँक-झाँक कर मुस्कराते थे; चम्पा और चमेली की कलियों से भरी डारें झूम-झूम कर हमें पास बुलाती थीं।

राम—देवी, राजमहल के ये महाभोग पाकर भी आज तुम्हें उन की याद आ रही है ?

सीता—महाराज, यह राजमहल, गहने, हीरे, मोती, दास, दासी, जैसे हमारे ऊपर बोझ हैं। तब हम और आप बिलकुल पास-पास थे।

राम—और अब ?

सीता—अब राजनीति हमारे बीच में आ गई है। स्वामी, मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे हम लोग पल-पल में दूर हो रहे हैं। आप हो गये राजा, मैं हो गई रानी। राज-काज आपको न जाने कहाँ-कहाँ खींच ले जाता है और इन महलों की दीवारों के भीतर मैं हीरे-मोतियों की जंजीरों से बँधी पड़ी रहती हूं। मेरी इच्छा है, महाराज; एक बार फिर वन का आनन्द उठाया जाय; ऋषियों का दर्शन करके उनका आशीर्वाद लिया जाय।

राम—[हँस कर] ऐसी ही इच्छा है तो लक्ष्मण कल तुम्हें लेजा कर वन-विहार करा लावेंगे प्रिये !

सीता—और आप ?

राम—तुम तो कह ही चुकी हो। राजा को विश्राम कहाँ ? भाई लक्ष्मण, कल भोर होते ही रथ जोतकर देवी को गंगातीर के ऋषियों का दर्शन करा लाना।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

[कंचुकी आता है]

कंचुकी—श्रीमहाराजाधिराज की जय हो।

राम—अरे भाई क्या समाचार है?

कंचुकी—महाराज का चर दुर्मुख उपस्थित है।

राम—अच्छा भाई,उसे यहीं भेज दो। [सीता से] सीते! तुम जाओ: आराम करो। मैं थोड़ा राजकाज कर अभी आता हूँ। भाई लक्ष्मण, तुम भी जाओ रथ तैयार रखने की आज्ञा दे दो। भोर ही देवी को बन-विहार के लिये ले जाना।

लक्ष्मण—जो महाराज की आज्ञा। (जाते हैं)

सीता—महाराज, वहाँ मैं राजसी आडम्बर में नहीं जाऊंगी। सेना आदि की आवश्यकता नहीं। अकेले देवर जी ही ठीक हैं।

राम—अच्छा प्रिये, ऐसा ही होगा। जाओ, अब आराम करो।

(सीता जी जाती हैं)

(दुर्मुख आता है)

दुर्मुख—महाराज की जय हो।

राम—कहो भाई, नगर का क्या समाचार है?

दुर्मुख—सब नगर वाले सुखी हैं, महाराज की जयजयकार मनाते हैं।

राम—वे क्या कहते हैं; विस्तार से कहो?

दुर्मुख—कहते हैं, महाराज ने अपने गुणों से स्वर्गवासी महाराजा दशरथ को भी भुला दिया।

राम—अरे भाई, यह तो प्रशंसा हुई। कुछ हमारी बुराईयाँ भी तो बताओ?

दुर्मुख—महाराज!

राम—कहो, निर्भय कहो।

दुर्मुख—कैसे कहूँ?

राम—कहो भैया। तुम्हारी राज-सेवा यही है कि जो कुछ सुनो सही-सही अपने राजा से कहो !

दुर्मुख—तो सुनिए महाराज। (रोने लगता है)

राम—अरे,तुम रोते हो ! क्या समाचार है ?

दुर्मुख—महाराज,मुझे बाँधकर बंदी कर लीजिए। मैं चर का काम नहीं कर सकता।

(पैरों में लोट जाता है)

राम—कहो, सब कुछ निर्भय कहो !

दुर्मुख—नगर का एक धोबी है।

राम—धोबी ! उसे क्या दुःख है ?

दुर्मुख—उसकी स्त्री बिना उससे कहे पीहर चली गई थी।

राम—उसे पति की आज्ञा लेनी चाहिए थी।

दुर्मुख—महाराज, जब लौटकर दूसरे दिन आई तो धोबी ने उसे बहुत पीटा।

राम—बहुत बुरा किया स्त्री को पीटना...

दुर्मुख—और कहा...

राम—क्या कहा ?

दुर्मुख—कैसे कहूँ।

राम—कहो भाई क्या कहा ?

दुर्मुख—कहा, क्या मुझे भी राम समझ लिया है कि जिसने राक्षस के घर में रही स्त्री को घर में रख लिया !

राम—आह ! यह कहा !

दुर्मुख—महाराज, दास को क्षमा हो।

राम—तुम्हारा क्या दोष है ? अच्छा, अब तुम जाओ।

[दुर्मुख रोता हुआ जाता है]

राम—[स्वगत] अरे हृदय, तू फट जा। मेरी सती सीता अब नीच लोगों की चर्चा की वस्तु हो गई है। अरे अयोध्यावासियो, मैंने सदा तुम्हारी मनचाही की; कभी धर्म न छोड़ा। अब तुम मेरी सीता को मुझसे अलग किया चाहते हो? मेरी पसलियाँ तोड़ लो, मेरी नस-नस खींच लो, पर पतिव्रता जनक-दुलारी को, अयोध्या की राजलक्ष्मी को मुझसे दूर न करो। अरे! तुम सीता को मुझसे अधिक क्या जानते हो? जो मुझको तुम नीच समझते हो? नहीं, मैंने सदा अपनी बलि दी और अब सब से बड़ी बलि दूँगा। प्रजा-रंजन के लिए सीता को त्याग दूँगा। हाय! वह महल में मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। प्रातःकाल वह उमंग में भरी गंगा-तीर जायगी, पर फिर वहां से लौटकर न आयगी। जानकी, तेरा भाग्य कैसा है? पापी राम की स्त्री बनने का फल पा। हाय रे राजधर्म! [रोते हैं फिर आँसू पोंछ कर] अरे हृदय, पत्थर का बन। मैं प्रजा का अपवाद नहीं सुन सकता। अच्छा मैंने अपनी प्यारी निरपराध सीता को त्यागा; जिसे ढूँढते हुए लंका तक गया; समुद्र का पुल बाँधा और रावण को मारा। [पुकारकर] पहरे पर कौन है?

[कंचुकी आती है]

कंचुकी—महाजाधिराज की जय हो। सेवक उपस्थित है।

राम—देखो, भाई लक्ष्मण को अभी भेज दो।

कंचुकी—जो आज्ञा महाराज।

राम—[आँखों पर हाथ रखकर सोचमें पड़ जाते हैं। लक्ष्मण के आने से आहट पाकर] कौन है? भाई लक्ष्मण, यहाँ आओ; और पास। मेरे सुख-दुःख के भाई! अरे वीर?

[फूट-फूट कर रोते हैं]

लक्ष्मण—महाराज, क्या हुआ ? किसने महाराज को दुःखित किया ? सेवक के रहते कौन महाराज को दुःखी कर गया ? महाराज ! देव, गन्धर्व, राक्षस और मनुष्य जो अपराधी होगा, उसे मैं जीता न छोड़ूँगा। अरे महाराज मूर्छित हो गये ! दौड़ो—

राम [होश में आकर] नहीं भैया मैं अच्छा हूँ। वत्स लक्ष्मण, अधीर मत होना।

लक्ष्मण—महाराज क्या कह रहे हैं ?

राम—हाँ ठीक है। तनिक सहारा देकर बिठा भाई। तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण, राजा न किसी का भाई, न पति। क्यों ?

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—वत्स लक्ष्मण, तुम मुझे सदा महाराज ही कहते हो, भैया नहीं कहते।

लक्ष्मण—आप महाराज ही तो हैं।

राम—अच्छी बात है। तो लक्ष्मण एक राजाज्ञा।

लक्ष्मण—कौनसी आज्ञा।

राम—बिना विलम्ब पालन करना होगा।

लक्ष्मण—जो आज्ञा महाराज।

राम—कल सूरज निकलने से पहले महारानी सीता को...

लक्ष्मण—वन ले जाना होगा ?

राम—हाँ गंगा के उस पार—ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में...

लक्ष्मण—भगवान् वाल्मीकि के आश्रम में !

राम—नहीं, नहीं। आश्रम के पास, देवी सीता को छोड़ आओ।

लक्ष्मण—छोड़ आऊँ।

राम—हाँ।

लक्ष्मण—क्यों महाराज ?

राम—यह राजाज्ञा है।

लक्ष्मण—महाराज !

राम—अब कुछ मत कहो लक्ष्मण !

लक्ष्मण—क्या महाराज ने देवी सीता को त्याग दिया ?

राम—हाँ।

लक्ष्मण—उनका अपराध

राम— पूछो मत।

लक्ष्मण—महाराज, आप उस महारानी को त्याग रहे हैं, जो शीघ्र ही माता बनने वाली है।

राम मैं जानता हूं।

लक्ष्मण—दुहाई महाराज की ! मैं विद्रोह करूँगा।

राम—राजाज्ञा हो चुकी; तुम्हें इसका पालन करना होगा

लक्ष्मण—महाराज, मुझे मार डालिये।

राम—लक्ष्मण राजाज्ञा का पालन करो।

लक्ष्मण—हाय महाराज !

राम—जाओ वत्स ! सूरज निकलने से पहले। समझ गये ?

लक्ष्मण—[छाती में घूंसा मार कर] सूरज निकलने से पहले, मैं मर जाऊँ तो अच्छा है।

[रोते हुए जाते हैं]

दूसरा दृश्य

(वन में गंगा के किनारे वाल्मीकि के आश्रम के पास सीता और लक्ष्मण ।

(समय मध्याह्न ।)

सीता—लक्ष्मण, आज मैं कितनी प्रसन्न हूँ !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—पर तुम बड़े उदास हो !

लक्ष्मण—क्या मैं ? नहीं तो । अब, उतरिए । महात्मा वाल्मीकि का आश्रम आ गया ।

सीता—क्या सच ? अहा ! ऋषि के दर्शन करके आज आँखें सफल होंगी । लक्ष्मण, महाराज कितने अच्छे हैं !

लक्ष्मण—हाँ भाभी ।

सीता—देखो, गंगा कैसी कलकल करती बह रही है ।

लक्ष्मण—हाँ भाभी ।

सीता—और ऋषियों की कुटियों से होम का धुआँ कैसा उठ रहा है ।ब्रह्मचारी वेदपाठ कर रहे हैं। उनकी ध्वनि कैसी प्यारी लग रही है ।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी ।

सीता—मैं आज गंगा में खूब विहार करूँगी । सुन रहे हो, न लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—हाँ भाभी ।

सीता—अरे तुम किस सोच में पड़े हो ? आओ, इस पत्थर पर थोड़ा बैठकर आराम कर लें ।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा।

सीता—जाओगे ! कहाँ जाओगे ?

लक्ष्मण—अयोध्या को ।

सीता—अयोध्या को !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—वाह ! देवर जी। आये देर न हुई, अभी जाओगे ! मैं तो आज दिन-भर वन में किलोल करूँगी। वाह ! भला, वन की यह बहार महलों में कहाँ ?

लक्ष्मण—तो भाभी, मुझे आज्ञा दीजिए।

सीता—कैसे अच्छे फूल खिले हैं ! कैसी भीनी महक फैल रही है, देवर जी !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—हम महाराज के लिए बहुत से फूल ले चलेंगे।

लक्ष्मण—भाभी, अब मैं जाऊँगा।

सीता—कहाँ देवर जी ?

लक्ष्मण—अयोध्या को।

सीता—अभी हम नहीं चलेंगे।

लक्ष्मण—पर मैं जाऊँगा, भाभी।

सीता—और मैं ?

लक्ष्मण—आप यहीं रहेंगी।

सीता—मैं ?

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—अकेली ?

लक्ष्मण—महात्मा वाल्मीकि का आश्रम तो पास ही है।

सीता—तुम्हारा मतलब क्या है लक्ष्मण ?

लक्ष्मण—महाराज की आज्ञा है।

सीता—महाराज की आज्ञा है।

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—क्या आज्ञा है ?

लक्ष्मण—कैसे कहूं भाभी।

सीता—कहो, लक्ष्मण, मैं आज्ञा देती हूं।

लक्ष्मण—महाराज की यही आज्ञा है कि देवी सीता को वन में महात्मा वाल्मीकि के आश्रम के पास छोड़ आओ।

सीता—छोड़ आओ, आह !

लक्ष्मण—हाँ, भाभी।

सीता—किसलिए ?

लक्ष्मण—मैं नहीं जानता।

सीता—महाराज ने क्या दासी को त्याग दिया ?

लक्ष्मण—सो तो वे जानें।

सीता—तो महाराज के दर्शन अब न हो सकेंगे ?

लक्ष्मण—कैसे कहूं !

सीता—अयोध्या के वे राजमहल, महाराज की वे प्यारी बातें, इतनी जल्दी सुपना हो जायेंगी ?

लक्ष्मण—भाभी, मेरा कलेजा फटा जा रहा है।

सीता—रोते हो लक्ष्मण ? छिः !

लक्ष्मण—भाभी।

सीता—जाओ तुम अयोध्या को। महाराज के चरणों में दासी का प्रणाम कहना।

लक्ष्मण—और कुछ ?

सीता—और यह कहना...

लक्ष्मण—क्या ?

सीता—कहना—महाराज, अभागिनी सीता ने कहा है कि जब पहले राजलक्ष्मी आपकी गोद में आई थी, तब मैं आपको वन में ले

भागी थी। अब राजलक्ष्मी की बारी है कि उसने मुझ दासी को आपसे दूर करके बन में भगा दिया है। इसमें आपका दोष नहीं; मेरे ही भाग्य का दोष है। मैं आपके बिना कभी न रहती; तुरन्त प्राण त्याग देती, पर बालक के जन्म लेने तक ले सूर्य में दृष्टि लगाकर तप करूँगी जिससे फिर मुझे आप ही पति मिलें।

लक्ष्मण—धन्य भाभी। अब मैं जाऊँ ?

सीता— जाओ देवर। महाराज से कहना, दासी के सब अपराध क्षमा करें।

लक्ष्मण—भाभी। [मूर्छित हो जाते हैं]

सीता—अरे, मूर्छित होकर गिर गये! अब मैं क्या करूँ ?

लक्ष्मण—[होश में आकर] नहीं भाभी, मैं अब ठीक हो गया। जाता हूं।

सीता—जाओ तुम्हारा मार्ग शुभ हो।

लक्ष्मण—भाभी, बन के देवता तुम्हारी रक्षा करें। प्रणाम।

सीता—[आँसू भर कर] सुखी रहो। सुनो, महाराज के चरणों में प्रणाम कह देना।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—मेरी सब दासियों और सखियों को ये मेरे गहने, जिन्हें जो पसन्द करें, बाँट देना। अब इन्हें पहनने के दिन बीत चुके।

लक्ष्मण —अच्छा।

सीता—उनसे कहना मेरे मोर और सुग्गों को ठीक समय दाना-पानी देते रहें।

लक्ष्मण —अच्छा।

सीता—महाराज से कहना, मेरे उस हिरन के बच्चे को सदा प्यार करते रहें। हाय! उसे तो बिना मेरी गोद के कहीं एक पल चैन ही नहीं पड़ता था।

लक्ष्मण—अच्छा भाभी।

सीता—लक्ष्मण, सब बहुओं को असीस देना। वे सदा सुहागिन रहें।

लक्ष्मण—अच्छा।

सीता—अब जाओ तुम।

लक्ष्मण—मैं चला भाभी। [जाते हैं]

सीता—गये, तेज और विनय के अवतार, बड़े भाई की आज्ञा को ईश्वर की आज्ञा मानने वाले जती लक्ष्मण;जिन्होंने अपनी इच्छासे चौदह वर्ष वन में नींद और भूख को जीत कर हमारी सेवा की; जिन्होंने कभी आँख उठाकर मेरी ओर नहीं देखा। धन्य लक्ष्मण, धन्य देवर। तुम-सा भाई दुनिया में न हुआ न होगा। जाओ परमेश्वर तुम्हारा भला करे। लो,वे गंगा पार उतर गये; वे रथ पर बैठ गये। सुपने की तरह अयोध्या के सब सुख खो गये। अब महाराज के मीठे प्यारे बैन कब सुनने को मिलेंगे ? कभी नहीं, कभीं नहीं, कभी नहीं। हाय रे सीता के भाग्य आह, यह कैसी पीर उठी। अरे, इस अभागिनी को कोई सँभालो। अरे ! मैं अयोध्या के महाप्रतापी महाराज की महारानी हूँ; पर इस समय कोई दास-दासी, सखी-सहेली तक पास नहीं। भगवती गंगा, क्या तुम्हारी गोद में आऊँ ? आह ! मन में प्यारे पुत्र का मुखड़ा देखने की कितनी लालसा थी। परन्तु सीता के भाग्य में पुत्रवती होना कहाँ ! माता कौसल्या, बहन ऊर्मिला, महाराज, ओह ! अब नहीं सहा जाता।

महाराज, ओह ! अब नहीं सहा जाता । आप सब ने अभागिनी सीता को भुला दिया ।

(मूर्च्छित हो जाती है)

[दो ऋषिकुमार आते हैं]

दोनों ऋषि कुमार—अरे ! यह कौन स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है, अथवा मर गई है ? (झुककर देखते हैं)

एक—अभी जीवित है ।

दूसरा—साँस चलता है ।

पहला—आश्रम की तो नहीं है । कोई नगर की स्त्री ज्ञात होती है !

दूसरा—किसी बड़े घर की राजलक्ष्मी मालूम देती है । गहने नहीं हैं पर कैसा रूप और तेज है !

पहला—बिल्कुल मूर्च्छित है ।

दूसरा—अब क्या किया जाय ? किसे पुकारें ? कौन सहाय करे ? तुम जाकर गुरु जी को सूचना दे दो कि एक स्त्री गंगा के किनारे मूर्च्छित पड़ी है । [देखकर] लो, वे गुरुजी स्नान करके इधर ही आ रहे हैं ।

[वाल्मीकि आते हैं]

दोनों—गुरु जी ! प्रणाम ।

गुरु वाल्मीकि—चिरंजीव रहो पुत्रो ! यहाँ तुम क्या कर रहे हो ?

दोनों ऋषिकुमार—महाराज, यह स्त्री यहाँ मूर्च्छित पड़ी है ।

गुरु वाल्मीकि—कौन है यह ? अरे यह तो रघुकुल की राजरानी सीता है !

[कमंडल से जल लेकर छींटे देते हैं]

दोनों ऋषिकुमार—ये महारानी सीता हैं ?

सीता—[सचेत होकर] आह वह सुपना भी टूट गया। [देखकर] आप कौन हैं ऋषिकुमार ? [ऋषि को देखकर] और आप ?

दोनों ऋषिकुमार—भगवती सीता, ये हमारे गुरु महर्षि वाल्मीकि हैं।

सीता—ऋषिवर, प्रणाम। अभागिनी सीता को कहीं आसरा मिलेगा ? उसके पापी प्राण तो उसके शरीर से बहुत ही मोह रखते हैं।

वाल्मीकि—बेटी, दुनिया गोरख-धन्धा है और जीवन भी। अब तुम धैर्य धारण करके भाग्य के विधान को देखो। पुत्रो, देवी को आश्रम ले जाकर भगवती आत्रेयी को सौंप दो। उनसे कह देना कि यह रघुकुल-राजरानी सीता हैं; इनको कोई दुःख न हो।

दोनों ऋषिकुमार—जो आज्ञा गुरुदेव। चलिए महारानी जी।

[जाते हैं]

तीसरा दृश्य

[स्थान—वन में मुनि वसिष्ठ का आश्रम ।
गुरु वसिष्ठ और श्रीराम बातें कर रहे हैं]

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम किस लिए अब मेरे पास आये हो ?

राम—गुरुदेव, दास अब और कहाँ जाय ? आप कहिए, मैं क्या करूँ ?

वसिष्ठ—कठिनाई क्या है रामभद्र, ?

राम—गुरुदेव, छोटे छोटे राजाओं की मनमानी से प्रजा में शान्ति नहीं रही है।

वसिष्ठ—तब ?

राम—एक-छत्र राज्य की बड़ी आवश्यकता है।

वसिष्ठ—तुम प्रतापी राजा हो राम। एक-छत्र राज्य की स्थापना करो।

राम—गुरुदेव, मैं अकारण किसी पर चढ़ाई नहीं करूँगा।

वसिष्ठ—तब एक बात है।

राम—कौन बात गुरुदेव ?

वसिष्ठ—अश्वमेध यज्ञ करो।

राम—अश्वमेध !

वसिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—गुरुदेव !

वसिष्ठ—क्यों राम, क्या हुआ ?

राम—महाराज, मैं भाग्यहीन, पत्नी और पुत्ररहित राजा हूँ। यज्ञ का अधिकारी नहीं।

वसिष्ठ—रामभद्र, तुम दूसरा विवाह करो। पत्नी और पुत्र तुम्हें प्राप्त होंगे।

राम—हाय ! गुरुदेव ! आप यह क्या कह रहे हैं ! [रोते हैं]

वसिष्ठ—रोते हो रामभद्र ?

राम—भगवन्, आपने मेरा घाव छू दिया।

वसिष्ठ—तुम तो बालक की भांति अधीर हो गये वत्स !

राम—गुरुदेव, सीता को त्यागे आज अठारह वर्ष होते हैं।

वसिष्ठ—होते तो हैं।

राम—इन अठारह वर्षों में मैंने सीता की सुध भी नहीं ली।

वसिष्ठ—हुआ तो ऐसा ही है।

राम—मैंने ऐसी निठुराई करके अपने ही ऊपर अत्याचार किया।

वसिष्ठ—अपने ही ऊपर ?

राम—आप लोगों को भी विशेष कष्ट हुआ है। अठारह वर्ष से अयोध्या सूनी पड़ी है। भगवती अरुन्धती, आप, माताएँ, भरत, मांडवी देवी और उनके साथ सहस्रों पुरवासी और राज कर्मचारी जब से अयोध्या छोड़ कर गये हैं मेरा जीवन नरक बन गया है। अब इस पापी को और पाप करने की आज्ञा न दीजिए, गुरुदेव !

वसिष्ठ—और कौन सा, राम ?

राम—यही, दूसरा विवाह करने का।

वसिष्ठ—धन्य रामभद्र, धन्य हो तुम ! धन्य तुम्हारी निष्ठा !! धन्य तुम्हारा प्रेम !!!

राम—तो महाराज, अश्वमेध नहीं हो सकेगा ?

वसिष्ठ—हो सकेगा राम। सीता की सोने की मूर्ति तुम्हारी अर्धांगिनी होगी।

राम—सीता की सोने की मूर्ति ?

वसिष्ठ—हाँ, रामभद्र।

राम—[उत्तेजित होकर] महाराज....

वसिष्ठ—रामभद्र, शान्त हो।

राम—सीता की मूर्ति ?

वसिष्ठ—हाँ, राम।

राम—मेरे अहोभाग्य गुरुदेव। उस मूर्ति में पवित्रात्मा सीता को देख पाऊँगा।

वसिष्ठ—अवश्य। राम, तुम यज्ञ की तैयारी करो।

राम—जो आज्ञा हो गुरुदेव।

वसिष्ठ—और स्वयं महात्मा वाल्मीकि के आश्रम में जाकर उन्हें न्योता दे आओ।

राम—जो आज्ञा [संकोच सहित] परन्तु गुरुदेव और सब माताएँ भी जायँ तो अच्छा है।

वसिष्ठ—बहुत अच्छा रामभद्र ! मैं उनसे कह दूँगा।

राम—तो दास चला। माताओं को देखे आज इतने वर्ष हो गये। उन्हें देखने को जी तरसता है। परन्तु अपराधी राम उन्हें मुँह दिखाने का नहीं रहा।

वसिष्ठ—समय पर सब ठीक हो जायगा, राम। जाओ और अश्वमेध की तैयारी करो।

राम—जो आज्ञा, गुरुदेव ! प्रणाम।

वसिष्ठ—कल्याण हो।

[जाते हैं]

चौथा दृश्य

[भगवान वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश सीता से बातें करते हैं]

लव—माँ, आज हम तुमसे वह भेद पूछकर रहेंगे।

सीता—कौन-सा भेद लाल ?

कुश—और, नहीं बताओगी तो रूठ जायँगे, बोलेंगे नहीं।

सीता—क्यों मेरे लाल, दुखिया माँ से रूठोगे ?

लव—तो बता दो आज।

कुश—सब ऋषीकुमार हमें चिढ़ाते हैं।

लव—हँसी करते हैं। कहते हैं—बताओ, तुम्हारे पिता कौन हैं ?

सीता—प्यारे पुत्रों, तुम्हारे पिता महात्मा वाल्मीकि ही तो हैं ?

कुश—नहीं, माँ। वे तो हमारे गुरुदेव हैं।

सीता—बेटे; गुरु ही पिता होता है।

लव—वाह गुरुजी तो सब के गुरु हैं, पर सब के पिता भी तो और हैं ? हम जानते हैं।

कुश—हमें बहकाओ मत माँ

सीता—क्यों बेटा, अभागिनी माँ पर विश्वास नहीं करते ?

[आँसू पोंछती है]

लव—रोने क्यों लगीं माँ ? तुमसे जब पिता जी का नाम पूछते हैं; तभी तुम रोने लगती हो !

कुश—रोओ मत माँ। अब हम कभी न पूछेंगे।

सीता—मेरे नयन-दुलारो, तुम्हीं मेरे जीवन-धन और आँखों के उजाले हो। तुम जीते रहो बेटे।

लव—तुम हमारी बड़ी अच्छी माँ हो। हो न माँ ?

सीता—अरे पुत्रों, मैं तो तुम्हारी धाय हूँ—दासी।

कुश—ऐसा न कहो माँ।

सीता—लाल, तुम्हारी माँ तो बड़ी भारी महारानी थी। उनका बड़ा प्रताप था। उनके बड़े-बड़े महल थे। राजधानी थी। हाथी घोड़े, रथ थे।

लव—सच!

सीता—सचमुच बेटे।

कुश—तो हम यहाँ क्यों आ गये माँ?

सीता—भाग्य ले आया लाल।

कुश—तुम्हें भी?

सीता—मुझे तुम्हारे पिता ने त्याग दिया था।

लव—त्याग दिया था?

सीता—हाँ, लाल।

कुश—क्यों माँ?

सीता—बेटा, वे राजा हैं।

कुश—और वे महल में रहते हैं?

सीता—हाँ, पुत्र।

कुश—तो हमारे पिता जी हैं तो?

सीता—हाँ, हैं।

लव—मैं उनसे नहीं बोलूँगा।

कुश—पिताजी बड़े बुरे हैं।

सीता—ऐसा न कहो लाल। तुम्हारे पिता दया और धर्म के अवतार हैं।

लव—और माता?

सीता—हाँ, वे—वे—वे—भी।

लव—हमारी माता तुम हो ?

सीता—लाल, मैं तुम्हारी दासी हूँ।

कुश—तुम हमारी माँ हो।

सीता—यह दुखिया— भिखारन तुम्हारी माँ ? हाय रे ! भाग्य !

कुश—माँ, तुम फिर रोने लगी ! मुझे बड़ा होने दो। मैं तुम्हारे लिए एक महल बनवाऊँगा।

लव—और मैं हाथी घोड़े ले आऊँगा।

[बहुत से ऋषिकुमार कोलाहल करते आते हैं]

एक ऋषिकुमार—कुमार, घोड़ा एक पशु होता है न ? ऐसा सुना था वह आज यहाँ आया है !

लव—घोड़ा एक पशु है और वह लड़ाई में काम आता है। कहाँ देखा तुमने घोड़ा ?

दूसरा ऋषिकुमार—आश्रम के उस पार है। उसकी बड़ी-सी पूँछ है। उसे वह बार-बार हिला रहा है।

तीसरा ऋषिकुमार—उसकी गर्दन बड़ी लम्बी है।

चौथा ऋषिकुमार—पैर में चार खुर हैं।

पाँचवाँ ऋषिकुमार—भूख लगने पर घास खाता है।

छटा ऋषिकुमार—आम के बराबर लीद करता है

सातवाँ ऋषिकुमार—चलो कुमार, उसे पकड़ लें। बड़ा मज़ा होगा।

लव—चलो फिर। देखें, कैसा घोड़ा है।

[सब जाकर घोड़े को देखते हैं]

[घोड़ा हिनहिनाता है]

लव—हाँ यही है घोड़ा। ठहरो, मैं इसे बाँधता हूं। तुम उसे ढेला मार कर रोको।

ऋषिकुमार—अहा हा ! बड़ा मज़ा है।

[सब चिल्लाते हैं। घोड़ा हिनहिनाता है
सिपाही आते हैं]

एक सिपाही—अरे ! किसे अपनी जान भारी हुई है, जिसने अश्वमेध का घोड़ा रोका है ? तुमने क्या महाप्रतापी राजा राम का नाम नहीं सुना ? जिन्होंने रावण का वंश नाश कर दिया उनसे जो वीर लोहा ले, वह यह घोड़ा रोके।

कुश—अरे ! यह तो बड़े घमंड की बातें करता है। सिपाहियो, क्या तुम्हारे महाराज-सा कोई शूर ही नहीं है ?

दूसरा सिपाही—अरे ऋषिकुमार, क्यों गाल बजाते हो। कुमार चन्द्रकेतु इस घोड़े की रखवाली कर रहे हैं। वे जब तक आवें, तब तक घोड़े को छोड़ दे और यहाँ से खिसक जाओ। इसी में भला है।

सब ऋषिकुमार—छोड़ दो कुमार, इनके चमकीले हथियारों से हमें डर लगता है। चलो; हम सब छलांगे मारते आश्रम को भाग चलें।

लव—(हँसकर)क्या चमकीले हथियारों से हम डरते हैं ? ठहरो, तनिक। देखो इस मेरे धनुष के खेल।

(धनुष पर डोरी चढ़ाता है)

सब ऋषिकुमार—अरे, कुमार को क्रोध आ गया ?

दूसरे—और वे बाणों की वर्षा करने लगे।

[सिपाही घायल होकर चिल्लाते हैं और कोलाहल मचता है।
सावधान रहो। वे रथ दौड़ाते हुए चन्द्रकेतु आ रहे हैं।]

[कुमार चन्द्रकेतु आते हैं]

चन्द्रकेतु—आर्य सुमन्त्र, हमारा रथ उसी वीर ऋषिकुमार के सामने ले चलिए। अरे, यह तो रघुवंशियों की भाँति खड़ रहा है !

सुमन्त्र—क्या कहने हैं। यह ऋषिकुमार महावीर है।

चन्द्रकेतु—परन्तु उस अकेले पर इतनों का इकट्ठा होकर चढ़ाई करना तो ठीक नहीं।

सुमन्त्र—पर वे सब उसका कर ही क्या सकते हैं? वह तो सब को मार डाल रहा है! देखो वह हमारी सेना भागने लगी!

चन्द्रकेतु—तो शीघ्रता कीजिए आर्य!। हमारा रथ जल्द वहाँ पहुँचाइए।

सुमन्त्र—अच्छा, कुमार! लो, वह वीर तुम्हारी ललकार सुन यहीं आगया।

लव—कुमार चन्द्रकेतु लो मैं आ गया।

[कोलाहल मचता है]

लव—अरे, देखो, ये हारे हुए सेनापति फिर मेरे सामने आने का साहस करते हैं।

चन्द्रकेतु—ठहरो ऋषिकुमार! उनकी चिन्ता मत करो। लो मैंने इन्हें रोक दिया। पर तुम पैदल मैं रथ पर, यह ठीक नहीं। मैं भी नीचे आता हूँ। आर्य, रथ रोक दीजिये। मैं पैदल लड़ूँगा।

सुमन्त्र—किसलिए कुमार?

चन्द्रकेतु—इस वीर ऋषिकुमार का आदर करने के लिए। ऋषिकुमार, यह रघुवंशी चन्द्रकेतु आपको प्रणाम करता है।

लव—कुमार इतना आदर दिखाने की क्या आवश्यकता है? आप रथ पर चढ़े ही अच्छे लगते हैं।

चन्द्रकेतु—तो आप भी एक रथ पर चढ़िए।

लव—अरे, वनवासी रथ पर चढ़ना क्या जानें?

सुमन्त्र—धन्य ऋषिकुमार। आपका विनय धन्य है।

लव—कुमार, सुना है महाराज राम को अभिमान नहीं है। फिर उनके सेवक क्यों अभिमान करते हैं ?

चन्द्रकेतु—अश्वमेध के घोड़े को रोकना रार ठानना ही है। जो लड़ना चाहे वही घोड़े को रोके।

लव—तो क्षत्रिय तो पृथ्वी पर और भी हैं।

सुमन्त्र—ऋषिकुमार, तुम छोटे मुँह बड़ी बात कहते हो।

लव—(हँस कर) श्रीमान्, परशुराम को तो महाराज ने मीठी-मीठी बातों ही से जीता था।

चन्द्र०—अरे! महाराज की निन्दा करता है।

लव—अरे! मुझ ही को आँख दिखाता है ?

चन्द्र०—अब हमारा फैसला हथियार करेंगे।

लव—तब लो हथियार।

[दोनों लड़ते है। राम आते हैं और दूर ही से पुष्पकविमान से उतर कर पुकारते हैं]

राम—पुत्रो, लड़ाई रोक दो, लड़ाई रोक दो।

चन्द्र०—अरे, महाराज स्वयं ही पधार रहे हैं।

लव—सच, तब चलो पूज्य चरणों में प्रणाम करें।

राम—अरे पुत्रो, तुम्हें घाव तो नहीं लगा !

चन्द्र०—नहीं महाराज, अब हम मित्र हो गये।

राम—बहुत अच्छा किया। तुम्हारा मित्र तो वीर-धीर दीखता है।

लव—महाराज, वाल्मीकि का शिष्य लव आप को प्रणाम करता है।

राम—आओ कुमार, मेरी गोद में बैठो। तुम्हें देखकर तो जैसे प्राण हरे हो गये। तुम्हारा नाम क्या है ?

लव—दास का नाम 'लव' है। हाय ! श्रीमहाराज तो मुझ से इतना प्यार करते हैं और मैं लड़ बैठा।

राम—पुत्र, तुम्हारी वीरता तुम्हें ही सजती है। कुमार ! तुम किस भाग्यवान् के पुत्र हो ?

लव—महाराज, हम भगवान् वाल्मीकि के पुत्र हैं।

राम—तो तुम अकेले हो ?

लव—जी, नहीं। बड़े भाई कुश हैं। भाई कुश, स्वयं महाराज रघु-पति यहां विराजमान हैं। इन्हें प्रणाम कीजिए।

कुश—ये ही रामायण के नायक महाराज हैं ! महाराज, वाल्मीकि-पुत्र कुश आपको प्रणाम करता है।

राम—अरे, मेरे दाहिने अंग फड़कने लगे। इन बालकों को देख कर तो इन्हें छाती से लगाने को जी चाहता है। आओ कुमारो, इधर हमारी गोद में बैठो।

कुश—महाराज, धूप बहुत तेज़ है आइए, इस साल के पेड़ की छाह में बैठिए।

राम—अच्छा पुत्र, चलो। अहा, इन बच्चों की मुखाकृति देवी सीता से कितनी मिलती है। हाय ! मेरे बेटे भी इतने बड़े हुए होते। पर अब इन बातों से क्या। [ठंडी सांस लेकर] हाय ! प्यारी सीता।

लव—महाराज क्या सोच रहे हैं ? ऐं ! यह क्या ? महाराज तो रोते हैं !

राम—[आंसू पोंछ कर] कुछ नहीं पुत्रो, कुछ नहीं। यह अभागा मन तो यों ही अधीर हो जाता है। हाँ, यह तो कहो। सुना है महात्मा वाल्मीकि एक काव्य रच रहे हैं, रामायण।

लव—हाँ, महाराज उसमें श्रीमहाराज और देवी सीता का ही तो वर्णन है।

राम—हाय ! देवी सीता।

(एक ऋषिकुमार आता है)

ऋषिकुमार—(दूर से पुकार कर) अरे मित्रो, तुम नहीं जानते। आज आश्रम में बड़े-बड़े अतिथि आये हैं। गुरुजी ने हमें छुट्टी कर दी है।

लव—कौन आये हैं ?

कुश—(देख कर) अरे ! वे सब तो इधर ही आ रहे हैं !

लव—पर इन सब के आगे चीथड़ा लपेटे हुए यह कौन है ?

राम—(खड़े होकर) ये महात्मा वसिष्ठ हैं। इनके साथ भगवती अरुन्धती और माता कौसल्या भी हैं। हाय ! मुझ पर तो विपत् का पहाड़ टूट पड़ा। अब कहाँ पापी मुँह छिपाऊँ ? अरे पुत्रों, इन गुरुजनों को आगे बढ़ कर सत्कार से प्रणाम करो।

(सब कुमार आगे बढ़ते हैं। राम एक ओर चले जाते हैं)

कौसल्या—अहा ! देखो, आज इन ऋषिकुमारों को छुट्टी हो गई है। बेचारे मग्न होकर-खेल-कूद कर रहे हैं। अरे ! इनके बीच यह कौन देवता के जैसा बैठा था ? कहीं मेरे राम तो नहीं। गुरुदेव, आप तो राम को पहचानते हैं। लो, वे हमें देखकर खिसक गये हाय ! राम।

वसिष्ठ—राम भद्र ही हैं। महारानी, तुम ने इन दोनों बालकों को भी देखा, जो इनके कन्धे पर हाथ धरे खड़े थे। लो, वे सब इधर ही आ रहे हैं।

कौसल्या—गुरुदेव, ये दोनों बालक कौन हैं ? यह तो क्षत्रिय-बालक दीख पड़ते हैं। पीठ पर तरकस, हाथ में धनुष, सिर पर जटा, मजीठ की रँगी धोती, मूँज की करधनी, पीपल का डंडा।

वसिष्ठ—ये क्षत्रियकुमार ही हैं महारानी।

कौसल्या—राम जब इतने बड़े थे तो बिलकुल ऐसे ही थे। हाय ! राम।

वसिष्ठ—चलो, महारानी। हम सब महात्मा वाल्मीकि के पास चल कर अपने सन्देह दूर करें।

कौसल्या—चलिए गुरुदेव।

(सब जाते हैं)

पांचवां दृश्य

(सीता और उसकी सखी वासन्ती। वाल्मीकि का आश्रम।

सीता—अरी सखी, सुना है वे आये हैं।

सखी—कौन देवी ?

सीता—वही मेरे जीवन-धन, महाराज रघुपति।

सखी—सुना तो मैंने भी है। तो देवी, तुम गंगा में स्नान करके नई मृगछाला पहन लो। लाओ, मैं तुम्हारे उलझे बालों को गूँथ दूँ; फूलों से सजा दूँ।

सीता—क्यों सखी ? यह किस लिए ?

सखी—देवी, एक बार आँख भरके तुम्हें वनदेवी के रूप में देखा चाहती हूँ। हाय ! मुरझाई हुई बेल की तरह तुम्हारी सोने की देह·········

सीता—सखी, यह देह आज मैं गंगा में विसर्जन करूँगी।

सखी—ऐसी बात न कहो देवी ! तुम्हारा यह पुण्य शरीर···

सीता—यह पापी शरीर·········

सखी—नहीं, नहीं। पति और पुत्र के रहते ऐसा न कहो। पर महाराज को ऐसा नहीं करना चाहिए था।

सीता—प्यारी सखी, रघुकुल-कमल की निन्दा मत करो।

सखी—धन्य सती। आज भी तुम्हारे मन में उनका वैसा ही प्यार है।

सीता—प्यार की अमृतधार पीकर अठारह वर्ष से जी रही हूँ सखी। पर आज मैं मरूँगी।

सखी—चुप रहो देवी। ऐसी बातें न करो।

सीता—मैं कैसे उन्हें पापी मुँह दिखाऊँगी; मैं अनाथ हूँ।

सखी—महाराज के रहते !

सीता—हाय रे ! मेरा भाग्य। [रोती है]

[राम आते हैं]

राम—यहीं तो देवी सीता को लक्ष्मण छोड़ गया था। हाय ! सीता, तुम कहाँ हो ?

सीता—अरे ! तो वही पुरानी पहचानी हुई बोली है ! इतने दिनों बाद कानों में आज फिर अमृतवर्षा हुई।

सखी—देवी, सँभल जाओ वे। इधर ही आ रहे हैं।

सीता—हाँ, वे ही हैं। कितने दुबले हो गये हैं। मुँह पीला हो गया है। बाल पक गये हैं। सखी, मेरा सिर घूम रहा है।

राम—हाय ! सीता, प्यारी सीता।

सीता—हाय ! आर्यपुत्र।

राम—अरे ! मेरे सुख-दुःख की संगिनी जनकदुलारी सीता...

[मूर्च्छित हो जाते हैं]

सीता—अरी सखी, वे तो इस अभागिनी को पुकारते पुकारते मूर्च्छित हो गये।

सखी—चलो, देवी ! उनका कुछ यत्न करें।

सीता—सखी,मेरा हाथ पकड़कर चलो। मेरी आँखें आँसुओं से अन्धी हो रही हैं और मेरे पाँव लड़खड़ा रहे हैं।

[दोनों मूर्च्छित राम के पास जाती हैं]

सखी—देवी, महाराज के शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरो।

राम—[मूर्च्छा में] चन्द्रमा नहीं है। दूर तारे टिमटिमा रहे हैं। सन्नाटा छा रहा है। नगरवासी सो रहे हैं। पर उनके राजा की आँखों में नींद नहीं है। कितने दिन बीत गये। सीता, कहाँ हो ? [जोर से] आओ सीता, आओ।

सीता—अरे ! महाराज मूर्च्छा में बड़बड़ा रहे हैं सखी, अब क्या करूँ ?

राम—सोने की सीता, तुम हँसती-रोती भी तो नहीं। क्या तुम क्रुद्ध हो ? कुछ पता नहीं। हँसो, प्राणेश्वरी ! मेरी सोने की सीता, हँस दो तनिक।

सीता—अरी सखी, आर्यपुत्र का यह विलाप तो सहा नहीं जाता। कैसे इन्हें चैतन्य करूँ ?

सखी—देवी, धीरे-धीरे महाराज के शरीर पर हाथ फेरो।

राम—अहा ! यह किसने छुआ ? प्राण हरे हो गये ! सूखते धान पर पानी पड़ा ! बोलो सीता देवी, बोलो। एक बार वह मीठा स्वर सुनने को तरस रहा हूँ। अरी प्रियंवदा सीता !

सीता—इतने दिन बाद सुध ली प्राण-धन। नाथ, अभागिनी दासी तो चरणों ही में है।

राम—कौन बोला यह ? कितना मधुर कितना प्रिय।

सीता—[रोती हुई] अरी सखी, आर्यपुत्र होश में आ रहे हैं। अब चलो यहाँ से।

राम—वही—वही—वही—स्वर है। सीता प्रिये···,सन्ध्या हो रही है। दुनिया सुनहरी रँग गई है। उस बरगद की डालियों की जड़ें धरती को चूम रही हैं। कौन पक्षी गा रहा है ? पम्पा-सरोवर······ यही तो पंचवटी है। यहीं तो हमारी कुटिया थी। उसमें सीता रहती थी—सीता। ओ देवी सीता !

सीता—हाय ! प्राणेश्वर, यह अधम दासी जीती-जागती यहीं है।

राम—कहाँ ? कौन ? तुम ? मैं ? कहाँ······

सखी—महाराज, सावधान हूजिए। देवी सीता यहीं हैं।

राम—देवी सीता ?

सखी—हाँ, महाराज।

राम—सीता·······

सखी—हाँ, महाराज। देखिए, वे मूर्च्छित होने लगीं।

राम—देवी, तुम्हारा यह मलिन वेश! उलझे हुए बाल! तो तुम देवी सीता हो ?

सीता—यह अभागिन आपकी दासी सीता है।

राम—जनक की राजदुलारी ?

सीता—हाँ, आर्यपुत्र।

राम—रघुकुल की राजलक्ष्मी।

सीता—अभागिनी सीता।

राम—हाय, प्रिये, मेरे रहते तुम्हारी यह हालत हो गई! अरे। देवी का यह रूप देखने से पूर्व ही मेरी आँखें फूट जायँ।

सीता—महाराज, इस जन्म में दर्शन हो गये। जीवन सफल हो गया। अरे! वे भगवती अरुन्धती और माता कौसल्या इधर ही आ रही है।

राम—उन्हें यह अधम राम कैसे मुँह दिखायेगा ?

[कौसल्या आती है]

कौसल्या—भगवती, वे रामभद्र ही हैं न? अब तो पहचाने भी नहीं जाते। अरे पुत्र राम!

अरुन्धती—महारानी, वहाँ सुभागी सीता भी हैं।

कौसल्या—तो सचमुच पुत्र और बहू में मेल हो ही गया।

अरुन्धती—हाँ, महारानी। आओ, रामभद्र का संकोच दूर करें।

[आगे बढ़कर जाती हैं]

राम—माता, यह कुपुत्र राम आपके चरणों में प्रणाम करता है।

कौसल्या—रामभद्र, मेरे पुत्र, आओ। मेरी छाती ठंडी करो [सीता को देख कर] अरी बेटी सीता, मेरी सुलक्षणा बहू, अरी तपस्विनी, तू धन्य है।

सीता—माताजी, आपकी दासी सीता प्रणाम करती है।

कौसल्या—सुहागिन रहो। रामभद्र, तो तुमने सीता को ग्रहण किया ना पुत्र ?

[एक ऋषिकुमार आता है]

ऋषिकुमार—आप सबको प्रणाम। विदेहराज जनक आप लोगों से मिलने आ रहे हैं।

कौसल्या—हाय ! मैं कैसे उस राजर्षि को मुँह दिखाऊँगी ?

राम—माता ! अपराधी तो मैं हूँ। मैंने ही जनकदुलारी को अनाथ बनाया था।

(जनक आते हैं)

जनक—भगवती अरुन्धती, सीरध्वज जनक आपको प्रणाम करता है। (कौसल्या को देखकर) अरे ! क्या प्रजा-रंजन करने वाले राजा की माता भी यहीं हैं ? और मेरी बेटी सीता भी ? हाय ! मेरी प्यारी बच्ची !

अरुन्धती—महाराज, महारानी कौसल्या ने तो इसी क्रोध से अठारह बरस तक रामभद्र का मुँह नहीं देखा। रामभद्र ने भी अपवाद के डर से यह काम किया था।

कौसल्या—हाय !

(मूर्च्छित हो जाती है)

अरुन्धती—(घबराकर) महारानी मूर्च्छित हो गईं।

जनक—मैंने बहुत कठोर बात कह दी, बुरा किया। यह महात्मा दशरथ की पत्नी बड़ी सती हैं। अरे मित्र दशरथ, तुम्हीं स्वर्ग में अच्छे रहे। हम यहाँ दुःख भोग रहे हैं।

कौसल्या—(चैतन्य होकर) बेटी जानकी, जब तू नई बहू बनकर महल में आई थी, उस समय का तेरा हीरे-मोतियों से सजा हुआ हँसता मुख मुझे याद है। अरे, स्वर्गवासी तो तुझे अपनी कन्या ही कहा करते थे। आज हमारे रहते तेरी यह दशा हो गई।

अरुन्धती—महारानी, धीरज धरो। अन्त में सब भला होगा।

कौसल्या—भगवती, अब इसकी क्या आशा है।

(ऋषिकुमार आते हैं)

ऋषि०—सब को प्रणाम। आप सबको गुरुदेव वाल्मीकि याद करते हैं। वहाँ महामुनि वसिष्ठ भी बैठे हैं।

अरुन्धती—चलो रामभद्र। महारानी और विदेहराज, चलो। बेटी सीता, सब कोई महात्मा वाल्मीकि के पास चलें।

राम—चलिए भगवती ! (सब जाते हैं)